जीवन रहस्य

भगवान श्री रजनीश

जीवन-रहस्य

भगवान श्री रजनीश

: सम्पादन :

स्वामी अविनाश भारती

: संकलन :

स्वामी आनन्द तीर्थ

ओम् रजनीश ध्यान केन्द्र प्रकाशन,
बम्बई

: प्रकाशक :

स्वामी ईश्वर समर्पण

ओम् रजनीश ध्यान केंद्र प्रकाशन,

भगवान भुवन, युसुफ मेहरअली रोड, बम्बई ४०० ००१.

प्रतियां : ३०००

: मुद्रक :

उदयन प्रिन्टर्स

बम्बई नं. १६.

: अनुक्रम :

१. रहस्य का द्वार

'दुख', 'सुख' और 'आनन्द' इन तीन शब्दों को समझना बहुत उपयोगी है। दुख और सुख भिन्न चीजें नहीं हैं--बल्कि इन दोनों के बीच जो भेद है, वह ज्यादा-से-ज्यादा मात्रा का, परिमाण का, डिग्री का है। और इसलिए सुख दुख बन सकता है और दुख सुख बन सकता है। जिसे हम सुख कहते हैं, वह भी दुख बन सकता है और जिसे दुख कहते हैं, वह भी सुख बन सकता है। इन दोनों के बीच जो फासला है, जो भेद है, वह विरोधी का नहीं है; भेद मात्रा का है।

एक आदमी को हम गरीब कहते हैं, एक आदमी को हम अमीर कहते हैं। और गरीब और अमीर में भेद भी किस बात का है?... विरोध है दोनों में? आमतौर से ऐसा दिखता है। तो गरीब और अमीर विरोधी अवस्थाएँ हैं। लेकिन सचाई यह है कि गरीबी और अमीरी एक ही चीज की मात्राएँ हैं। एक आदमी के पास एक रुपया है तो गरीब है और एक करोड़ है तो अमीर है। अगर एक रुपये में गरीब है, तो एक करोड़ में अमीर कैसे हो सकता है? इतना ही हम कह सकते हैं कि एक करोड़ गुना कम गरीब है। और अगर एक करोड़वाला अमीर है तो एक रुपयेवाला गरीब कैसे है? फिर इतना ही हम कह सकते हैं कि वह एक करोड़-गुना कम गरीब है।

इन दोनों में जो भेद है, वह भेद ऐसा नहीं है जैसा कि दो विरोधियों में होता है—वह भेद ऐसा है, जैसा एक ही चीज की मात्राओं में होता है। लेकिन गरीबी दुख हो सकती है, और अमीरी सुख हो सकती है। और गरीब दुखी है और अमीर होना चाहता है।

तो दुख और सुख में जो भेद है, वह भेद ही मात्रा का है। इसी भाँति हमारी सारी सुख की अनुभूतियाँ दुख से जुड़ी हुई हैं। और हमारी सारी दुख की अनुभूतियाँ भी सुख से जुड़ी हुई हैं। इन दोनों के बीच जो डोल रहा है, वह संसार है। संसार में होने का मतलब इतना ही नहीं है कि सिर्फ

दुखानुभूति। अगर संसार में सिर्फ दुख की अनुभूति हो तो कोई भटके ही नहीं। फिर तो भटकने का उपाय ही न रहा। भटकता सिर्फ इसलिए है कि सुख की आशा होती है--अनुभूति दुख की होती है; और सुख मिल जाता है तो मिलते ही दुख में बदल जाता है।

संसार की अनुभूति को दो-तीन तरह से देखना चाहिए। एक तो यह कि सुख सदा भविष्य में होता है। और कल मिलनेवाले सुख के लिए आज हम दुख झेलने को तैयार होते हैं। आज के दुख को हम इस आशा में झेल लेते हैं कि कल सुख मिलेगा। अगर कल सुख की कोई आशा न हो तो आज के दुख को एक क्षण भी झेलना कठिन है।

उमर खैय्याम ने एक गीत लिखा है, और उस गीत में वह कह रहा है : मैं बहुत जन्मों से भटक रहा हूँ और सबसे पूछ चुका हूँ कि आदमी भटकता क्यों है? लेकिन वह उत्तर नहीं मिलता। और तब मैंने थककर एक दिन आकाश से ही पूछा कि तूने तो सब भटकते लोगों को देखा है, और उन सबको भी देखा है जो भटकन के बाहर हो गये हैं। और उन सबको भी देखता रहेगा, जो भटकन में आयेंगे। और उनको भी देखता रहेगा, जो भटकन के बाहर होंगे। तू ही मुझे बता दे कि आदमी भटकता क्यों है? तो चारों तरफ आकाश से वह अपने गीत में कहता है, मुझे आवाज सुनायी पड़ी : "आशा के कारण; बिकाज ऑफ होप।"

आदमी भटकता क्यों है?... आशा के कराण।

और आशा क्या है?... इस बात की सम्भावना कि कल सुख मिलेगा; इस बात का आश्वासन कि कल सुख मिलेगा। आज दुख झेल लो, कल सुख मिलेगा। आज का दुख हम झेलते हैं, कल के सुख की आशा में। फिर कल जब सुख मिलता है तो बड़ी आश्चर्यजनक घटना घटती है। सुख मिलते ही फिर दुख हो जाता है। जो चीज उपलब्ध हो जाती है--कितनी कल्पना की थी कि उसके मिलने पर यह होगा, यह होगा, यह होगा! और प्रत्येक व्यक्ति अपने अनुभव को थोड़ा जाँचेगा तो हैरान होगा कि मैंने कितने-कितने सपने संजोये कि यह होगा, यह होगा, यह होगा। फिर मुझे मिल गयी और पाया कि कुछ भी न हुआ। सबके-सब सपने कहाँ खो गये, कुछ पता न चला। वे सबकी-सब कल्पनाएँ कहाँ विलीन हो गयीं, कुछ पता न चला।

चीज हाथ में आयी कि जो-जो उसके मिलने की सम्भावना में छिपा हुआ सुख था, वह तिरोहित हो जाता है। जब तक नहीं मिलता, तब तक प्रतीक्षा में सुख मालूम होता है; जब मिल जाता है, सब सुख समाप्त हो जाते हैं--फिर नयी दौड़ शुरू जाती है, क्योंकि जहाँ दुख है, वहाँ से हम भागेंगे।

यह भी समझ लेना चाहिए : जहाँ दुख है, वहाँ हम रुक नहीं सकते, वहाँ से भागेंगे; क्योंकि जहाँ दुख है, वहाँ कैसे रुका जा सकता है! दुख भगाता है, दुख से हम हट जाना चाहते हैं।

और दुख से हटने का उपाय क्या है?

एक ही उपाय दिखायी पड़ता है, साधारणतः, और वह यह है कि सुख की किसी आशा में हम आज के दुख को भुला देते हैं, विस्मरण कर देते हैं। तो फिर जैसे ही दुख शुरू होता है, हम नयी आशा सुख की बनाते हैं। उस आशा में हम वह सब डाल देते हैं, जो हमारे दुख से विपरीत है। वह सब समाविष्ट कर देते हैं, जो हम चाहते हैं कि हो। और इस तरह आदमी जीता दुख में है--जीता दुख में है, होता दुख में है, लेकिन आँखें उसकी सुख में लगी रहती हैं! जैसे आदमी चलता पृथ्वी पर है और देखता सदा आकाश की ओर है। आकाश पर देखने में एक सुविधा हो सकती है कि वह पृथ्वी पर होना भूल जाये।... फिर होगा पृथ्वी पर!

हम खड़े हैं दुख में, लेकिन आँखें सदा सुख में अटकी रहती हैं। इससे सुविधा यह हो जाती है कि दुख को हम भूल जाते हैं और दुख को झेलने की क्षमता उपलब्ध कर लेते हैं। अब अगर बहुत गहरे में देखा जाये तो सुख जो है, वह सिर्फ सम्भावना है, सत्य कभी भी नहीं। दुख सदा सत्य है, तथ्य है, वास्तविक है। लेकिन दुख कैसे झेला जाये? तो हम उसे सुख की आशा में झेल लेते हैं। कल का सुख आज के दुख को सहने-योग्य, सहनीय बना देता है। और वह सुख जो कल का है, वह कभी मिलता नहीं है। और जिस दिन मिल जाता है भूल-चूक से, उसी दिन हम पाते हैं कि भ्रांति टूट गयी; इलूजन टूट गया; जो आशा हमने बाँधी थी, गलत सिद्ध हुई। लेकिन इससे हम सिर्फ इतना ही समझ पाते हैं कि यह सुख गलत था, दूसरे सुख गलत नहीं हैं। इस आशा में आगे दौड़ते रहते हैं।

यह भूल थी; लेकिन अब यह भूल भ्रान्त सिद्ध हो गयी, टूट गयी--दुख आ गया। तो अब फिर चित्त भागेगा। यानी हम एक आशा से उखड़ते

हैं, लेकिन आशामात्र से नहीं उखड़ जाते हैं। एक सुख की व्यर्थता को जान लेते हैं, लेकिन सुखमात्र भी व्यर्थता को नहीं जान पाते। इसलिए दौड़ जारी रहती है । अगर दुख ही हो जीवन में और सुख की सम्भावना का कोई भाव भी न हो, तब तो एक व्यक्ति एक क्षण संसार में नहीं रह सकता; एक क्षण भी रहना मुश्किल है; एक क्षण में ही मुक्त हो जाये।--लेकिन; आशा उसे गतिमान रखती है। और जो मैंने कहा कि मुक्त व्यक्ति को जो मिलता है, उसे सुख नहीं कहना चाहिए। शब्द हम कोई भी उपयोग कर सकते हैं, उसे सुख नहीं कहना चाहिए, क्योंकि उसे जो मिलता है, वह सुख और दुख दोनों से भिन्न है। इसलिए उसे आनन्द कहना चाहिए; उसे नया शब्द देना चाहिए।

अब यह बड़े मजे की बात है कि आनन्द से विपरीत शब्द तुमने न सुना होगा। सुख-दुख एक-दूसरे के विपरीत हैं, लेकिन आनन्द के विपरीत कौन-सा शब्द है? आनन्द के विपरीत कोई शब्द नहीं है। आनन्द के विपरीत कोई अवस्था ही नहीं है। और आनन्द सुख नहीं है। अगर उसे सुख बनाया तो बात और होगी। वह फिर दुख की दुनिया शुरू हो गयी। तो साधारणत: हम कहते हैं, वह व्यक्ति आनन्द को उपलब्ध होता है, जो दुख से मुक्त हो जाता है। लेकिन इस कहने में थोड़ी भ्रान्ति है। कहना ऐसा चाहिए, आनन्द को वह व्यक्ति उपलब्ध होता है, जो सुख-दुख से मुक्त हो जाता है। वे जो सुख-दुख हैं, वे कोई दो चीजें नहीं हैं। और इसलिए साधारणजन को निरन्तर यह गलती हो जाती है समझाने में कि वह आनन्द को सुख ही समझ लेता है; समझता है—दुख से मुक्त हो जाना सुख है!

इसलिए बहुत-से लोग सत्य की खोज में या मोक्ष की खोज में वस्तुत: सुख की ही खोज में होते हैं। इसलिए महावीर ने एक बहुत बढ़िया काम किया: सुख के खोजी को उन्होंने कहा, वह स्वर्ग का खोजी है; आनन्द के खोजी को उन्होंने कहा, वह मोक्ष का खोजी है। मोक्ष और स्वर्ग में जो फर्क है, वह खोज का है। दुख का खोजी नर्क का खोजी है, सुख का खोजी स्वर्ग का खोजी है। लेकिन दोनों से जो मुक्ति का खोजी है, वह मोक्ष का खोजी है। स्वर्ग मोक्ष नहीं है। महावीर के पहले बहुत व्यापक धारणा यही थी कि स्वर्ग परम उपलब्धि है। उसके आगे क्या उपलब्धि है--सुख जहाँ मिल गया, वह परम उपलब्धि है।

लेकिन इस बड़े मनोवैज्ञानिक सत्य को समझना चाहिए कि जहाँ सुख होगा, वहाँ दुख अनिवार्य है। जैसे जहाँ उष्णता होगी, वहाँ शीत अनिवार्य है। जैसे जहाँ प्रकाश होगा, वहाँ अन्धकार अनिवार्य है। असल में ये एक ही सत्य के दो पहलू हैं और एक साथ ही जीते हैं। और इनमें से एक बचाना और दूसरे को फेंक देना असम्भव है। ज्यादा-से-ज्यादा इतना ही किया जा सकता है कि हम एक को ऊपर कर लें और दूसरा नीचे हो जाये। जब हम सुख के भ्रम में होते हैं, तब दुख नीचे छिपा होता है और प्रतीक्षा करता है कि कब प्रगट हो जाऊँ; और जब हम दुख में होते हैं, तब सुख नीचे छिपा होता है और प्रतिपल आशा दिये जाता है कि अभी प्रगट होता हूँ,...अभी प्रगट होता हूँ। लेकिन दोनों चीजें एक ही हैं। और यह अगर समझ में आ जाये तो सुख का भ्रम टूटता है। सुख का भ्रम टूटे तो दुख का साक्षात् होता है।

सुख का भ्रम बना रहे तो दुख का साक्षात् नहीं होता, क्योंकि उस भ्रम के कारण हम दुख को सहनीय बना लेते हैं; हम उसे सह जाते हैं, झेल जाते हैं। सुख का भ्रम दुख का पूर्ण साक्षात् नहीं होने देता; जैसा दुख है, उसे पूरा प्रगट नहीं होने देता। उसकी पूरी पैनी धार हमें छेद नहीं पाती। सुख, दुख की धार को बोथला कर देता है। असल में हम दुख की तरफ देखते ही नहीं। हम सुख की तरफ देखे ही चले जाते हैं। दुख इधर पैरों के नीचे से निकलता है, लेकिन हम कभी आँख गड़ाकर दुख को नहीं देखते; हम सदा एस्केप कर जाते हैं। दुख से सुख की आशा में हम सदा भागे चले जाते हैं।

जो व्यक्ति सुख के भ्रम से मुक्त होगा, जिसे यह दिखायी पड़ेगा कि सुख-जैसा कुछ भी तो नहीं है। लौटकर पीछे देखो तो ख्याल में आ सके। हम सदा देखते हैं आगे, इसलिए ख्याल में नहीं आता है। लौटकर पीछे देखो—कब था, जब सुख पाया?...ऐसा कौन-सा क्षण था, जब सुख पाया? पीछे लौटकर देखो, क्योंकि वहाँ घटनाएँ घट चुकी हैं। ऐसा कौन-सा क्षण था, जब पाया।

तो बड़ी हैरानी होगी पीछे लौटकर सुख देखने पर; एकदम मरुस्थल मालूम पड़ता है, जहाँ सुख का कोई फूल कभी नहीं खिला। हालाँकि बहुत बार--अब जो कि यह अतीत हो गया, पास्ट हो गया—अतीत नहीं था,

भविष्य था। तो इसमें भी हमने सोचा था कि सुख मिलेगा, मिलेगा, मिलेगा। फिर वह अतीत हो गया और हमारी आशा और भविष्य में चली गयी। कल जो भविष्य था, आज अतीत हो गया है। आज जो भविष्य है, कल अतीत हो जायेगा। और अतीत को लौटकर देखो कि सुख कभी मिला? हालाँकि ठीक इतनी ही आशा तब भी थी—मिलने की, पाने की, उपलब्धि की; इतनी ही धारणा तब भी थी, वह नहीं मिला लेकिन। इतनी ही धारणा अब भी है। वह हम वही कर रहे हैं, जो हमने पीछे किया था। आज को झेल रहे हैं कल की आशा में। इसलिए आज को देख नहीं पाते।

इस सूत्र को समझ लेना चाहिए : जो सुख के भ्रम में है, वह दुख का साक्षात्कार नहीं कर सकता है। सुख का भ्रम साक्षात्कार दुख का होने ही नहीं देता। बल्कि, असलियत तो यह है कि हम सुख का भ्रम ही इसलिए पैदा करते हैं ताकि दुख का साक्षात्कार न हो सके। एक आदमी भूखा पड़ा है, वह भूख का साक्षात्कार नहीं कर पाता, क्योंकि कल जो भोजन बनेगा, मिलेगा—मिल सकता है—उसके सपने देख रहा है। एक आदमी बीमार पड़ा है, वह बीमारी का साक्षात्कार नहीं कर पाता; क्योंकि वह उन सपनों में खोया है, कल जब वह स्वस्थ हो जायेगा।

हम पूरे समय चूक गये हैं उस जगह से, जहाँ हम हैं। और जहाँ हम हैं, वहाँ निरन्तर दुख है।

शायद उस दुख को झेलना इतना कठिन है कि हमें चूकना पड़ता है, भागना पड़ता है; एस्केप कर जाते हैं, पलायन कर जाते हैं। सुख का भ्रम टूट जाये तो भागोगे कहाँ, यह भी कभी सोचा? अगर सुख का भ्रम टूट जाये तो हम भागेंगे कहाँ? हम जायेंगे कहाँ? हमें दुख में जीना पड़ेगा, दुख भोगना पड़ेगा, दुख जानना पड़ेगा, दुख के साथ आँखें गड़ानी पड़ेंगी; क्योंकि कोई उपाय नहीं है कहीं और जाने का; हम हैं और दुख है।

जो व्यक्ति दुख का साक्षात्कार करेगा, वह उस तीव्रता पर पहुँच जाता है जहाँ से वापसी शुरू होगी, जहाँ से वह रुकता है।

जो मैंने सुबह कहा, दुख की पूरी पीड़ा, पूरी सर्फरिंग : जब सब तरफ से काँटे उसे छेद लेते हैं और भविष्य में कोई आशा नहीं रह जाती और आगे कुछ भी उपाय नहीं रह जाता—तब वह जायेगा कहाँ? जब आगे, बाहर, भविष्य में कोई आशा नहीं, तो अपने पर लौटता है। जिस दिन दुख

का पूरा साक्षात्कार होता है, उसी दिन वापिसी शुरू हो जाती है; उसी दिन व्यक्ति लौटने लगता है।

इसे समझ लेना : दुख से भागोगे सुख में पहुँच जाओगे; दुख में जागोगे तो आनन्द में पहुँच जाओगे। दुख से भागे कि सुख—वह भागने की तरकीब है। दुख से नहीं भागे, दुख में खड़े ही हो गये, दुख को पूरा देखा ही, दुख का साक्षात् किया—और रूपान्तरण शुरू हुआ। क्योंकि जैसे ही दुख का पूरा साक्षात्कार होगा, हम वही फिर कैसे कर सकेंगे, जो दुख लाता है; हम फिर उन्हीं ढंगों से कैसे जी सकेंगे, जिससे दुख आता है; हम फिर उन्हीं वासनाओं में, उन्हीं तृष्णाओं में कैसे घिरेंगे, जिनका फल दुख है; हम फिर वे ही बीज कैसे बोयेंगे, जिनके फलों में दुख आता है। लेकिन यह दुख के पूरे साक्षात्कार से, एनकाउन्टर विथ सारो... वह है, वहाँ पीड़ा, सफरिंग है, लेकिन उसको हमने कभी आँख मिलाकर देखा नहीं।

दुख का साक्षात्कार अनिवार्यरूपेण आनन्द की यात्रा बन जाता है। तुम्हें जाना नहीं पड़ता, बस तुम जाना शुरू हो जाते हो; क्योंकि तुम पहचानते हो कि यह-यह मैंने किया।

बुद्ध कहते हैं, यह किया, उससे यह हुआ। तो यह मत करो, इससे यह नहीं होगा—ऐसा नियम है। हमने यह किया, मैंने गाली दी, गाली लौटी। मैंने गाली दी, मैंने दुख दिया, दुख आया। अब अगर उस दुख का पूरा बोध मुझे हो जाये, इसका छुरा मेरी छाती में पूरा घुस जाये और मैं कोई सपने देखकर इसे भूला न दूं, तो क्या होगा? तो यही होगा न, कि कल मैं गाली नहीं दूंगा, कल मैं किसी को दुख नहीं पहुँचाऊँगा; क्योंकि पहुँचाया गया दुख वापस लौट आता है। और तब दुख की संभावना क्षीण होती चली जायेगी। यह उदाहरण के लिए मैंने कहा। इसी तरह जीवन प्रत्येक विकल्प पर कैसे-कैसे दुख होता है, वह मुझे दिखायी पड़ना शुरू हो जायेगा। जो चीज दिखायी पड़नी शुरू हो जायेगी,...

कोई आदमी दुख में कभी नहीं उतरता। सब आदमी सुख की नाव पर सवार होते हैं, दुख की नाव पर कोई सवार नहीं होता। कौन दुख की नाव पर सवार होने को राजी होगा? अगर पक्का पता है कि यह नाव दुख की है, और दुख के घाट पर उतार देगी तो कौन सवार होगा?

हम नावों में सवार होते हैं दुख की, लेकिन घाट सदा सुख का होता

है; इसलिए सवाल उठ आते हैं; इसलिए आशा यह रहती है कि कोई फिक्र नहीं, अभी थोड़ा राह में नाव अगर थोड़ा कष्ट भी देती है, डूबने का डर भी देती है, तो भी कोई फिक्र नहीं, घाट के उस पार सुख है। लेकिन दुख की नाव सुख के घाट पर कैसे पहुँच सकती है? असल में दुख देनेवाला साधन सुख का साध्य कैसे बन सकता है?

असल में प्रथम कदम पर जो हो रहा है, वही अन्तिम पर भी होगा। बहुत गहरे में 'द फर्स्ट इज द लास्ट'; क्योंकि वहीं से शुरूआत हो गयी। अगर मैंने ऐसा कदम उठाया है, जो अभी दुख दे रहा है, तो यह कैसे सम्भव है कि यही कदम कल और आगे बढ़कर सुख दे देगा! इतना ही सम्भव है कि कल और आगे बढ़कर यह और ज्यादा दुख दे देगा; क्योंकि आज तो थोड़ा छोटा है, कल और बड़ा हो जायेगा। मैं दस कदम और उठा लूँगा। परसों और दस कदम उठा लूँगा और यह रोज बढ़ता चला जायेगा। यह दुख का छोटा-सा बीज रोज वृक्ष होता चला जायेगा; इसमें और शाखाएँ; निकलेंगी। इसमें और फल लगेंगे, इसमें और फूल लगेंगे। और न केवल फूल, बल्कि एक बीज से बहुत जल्दी हजार-करोड़ वृक्ष हो जायेंगे। वे बीज गिरेंगे और वृक्ष उठेंगे। और यह फैलता चला जायेगा। और यह अन्तहीन फैलाव है। इसलिए एक बीज कितने वृक्ष पैदा कर सकता है, कोई हिसाब लगाया है किसी ने भी कभी?

शायद पृथ्वी पर जितने वृक्ष हैं, एक ही बीज पैदा कर सकता है। पृथ्वी पर थोड़े ही वृक्ष हैं। शायद सारे ब्रह्माण्ड में जितने वृक्ष हैं, एक ही बीज पैदा कर सकता है। एक बीज की फैलने की अनन्त सम्भावना है, इसे अगर सोचने जाओगे तो एकदम घबड़ा ही जाओगे। अनन्त सम्भावना इसलिए है कि एक बीज करोड़ बीज हो सकता है। फिर प्रत्येक एक बीज करोड़ बीज होता चला जाता है। होता ही चला जाता है, इसका कोई फैलाव का रुकाव नहीं है।

तो हम जो पहला कदम उठाते हैं, वह बीज बन जाता है। और अन्तिम फल उसकी सहज परिणति है। लेकिन हम उठा लेते हैं इस आशा में कि--बीज तो जहर का बो देते हैं, इस आशा में कि फल अमृत के होंगे! वे कभी अमृत के नहीं होते हैं। बार-बार हमने अनुभव किया है। निरन्तर-निरन्तर, प्रतिपल हमने यह जाना है जो कि बीज बोये थे, वही

फल आ गये। लेकिन हम अपने को धोखा देने में कुशल हैं। और जब फल आते हैं तो हम कहते हैं: जरूर कहीं कोई भूल हो गयी, जरूर कहीं कोई गलती हो गयी, जरूर परिस्थियाँ अनुकूल न थीं; हवाएँ ठीक न बहीं; सूरज वक्त पर न निकला; वर्षा ठीक समय पर न हुई; ठीक वक्त खाद न डाला गया, इसलिए फल कड़वे आ गये!

सब चीज पर दोष देते हैं, इस चीज को छोड़ जाते हैं कि बीज जहरीला था। और मजे की बात यह है कि अगर वर्षा समय पर न हुई हो, अनुकूल परिस्थिति न मिली हो, माली ने ठीक वक्त पर खाद न दिया हो, सूरज न निकला हो, इस कारण सिर्फ इतना ही हो सकता है कि फल जितना बड़ा हो सकता था, उतना बड़ा न हुआ हो; इसलिए इस कारण इतना ही हो सकता है कि जितना जहरीला फल मिला, वह छोटा ही रहा हो। और बड़ा जहरीला फल मिल सकता था, अगर सब अनुकूल होता।

इसे थोड़ा समझना चाहिए: जितना दुख हमें मिलता है, आमतौर पर हम कहते हैं कि यह परिस्थितियों के ऊपर निर्भर है, परिस्थितियाँ हमें दुख दे रही हैं--मैं तो ठीक हूँ। मित्र गलत हैं, पत्नी गलत है, पिता गलत है, पति गलत है, संसार ही गलत है, परिस्थितियाँ गलत हैं, मैं तो ठीक हूँ--ऐसे हम बीज को बचा रहे हैं। मैंने जो किया, वह ठीक है, लेकिन अनुकूल न मिला साथ, हवाएँ उल्टी बह गयीं, सूरज नहीं निकला, सब गड़बड़ हो गया।

लेकिन, ध्यान रहे, अगर प्रतिकूल परिस्थितियों में उतना कड़वा फल आया, तो अनुकूल परिस्थितियों में कैसा कड़आ फल आता है, इसका कोई हिसाब नहीं। हमें ख्याल में नहीं है: हम जो इच्छाएँ करते हैं, अगर वे पूरी हो जाएँ पूरी-की-पूरी, तो हम इतने बड़े दुख में गिरें, जितने बड़े दुख में हम कभी भी न गिरे होंगे।

इसे थोड़ा समझना चाहिए।

आमतौर से हम सोचते हैं कि हम इसलिए दुखी हैं कि हमारी इच्छाएँ पूरी नहीं होतीं। हमारा तर्क यह है; हमारे दुख का कारण यह है कि हम जो इच्छा करते हैं वह पूरी नहीं होतीं—जब कि सचाई यह है कि हमारे दुख का कारण यह है कि हम जो इच्छा करते हैं, वही दुख का बीज है। और वह बिना पूरे हुए इतना दुख दे जाती है, अगर पूरी हो जाये तो कितना

दुख दे जायेगी, बहुत मुश्किल है कहना !

सोचें! कोई भी एक इच्छा को सोचें, अगर वह बिल्कुल पूरी हो जाये...?

एक प्रेमी एक प्रेयसी को चाहता है। जितनी देर नहीं मिलती है प्रेयसी, उतनी देर आशा का सुख भोगता है, प्रतीक्षा का सुख भोगता है। अभी इच्छा पूरी नहीं हुई। हालाँकि उस वक्त वह बहुत दुखी रहता है। उस वक्त, उससे पूछो तो वह कहेगा, मैं इतना दुखी हूँ, जिसका कोई हिसाब नहीं; क्योंकि जिसे पाना है, वह नहीं मिल रहा है। हजार बाधाएँ आ रही हैं—एक प्रेमी को, जो अपनी प्रेयसी को पाने की खोज में लगा है; एक प्रेयसी को, जो अपने प्रेमी को पाने की खोज में लगी है जब तक वह नहीं मिल गया है। जो जानते हैं, वे कहेंगे : जितना सुख उस वक्त भोग लिया, वही काफी है। हालाँकि वह नहीं कहेगा कि मैंने सुख भोगा उस वक्त! इतनी पीड़ा झेली, जिसका कोई हिसाब नहीं। लेकिन प्रेयसी मिल जाये, एक इच्छा पूरी हुई मिलने की और मिलते ही जो आशाएँ थीं, वे सब तत्काल क्षीण हो जायेंगी; क्योंकि पाने का, जो आक्रमण का, विजय का, जीतने का, सफल होने का जो भी सुख था, वह सब गया; ... सफल हो गये! ... पा लिया! वह जो इतने दिन तक आशा थी कि पाने पर यह होगा, यह होगा, यह होगा वह आशा भी गयी; क्योंकि वह सब आशा पाने से सम्बन्धित न थी, वह सब आशा हमारे ही सपने और काव्य थे, हमारी ही कल्पनाएँ थी, जो हमने आरोपित की थीं। और एक प्रेयसी दूर से जैसी लगती है, वैसी पास से नहीं...

...दूर के ढोल ही सुहावने नहीं होते, दूर की सभी चीजें सुहावनी होती हैं। असल में दूरी एक सुहावनापन पैदा करती है।

फासला जो है, वह बहुत चार्मिंग है। जितनी दूरी, उतना सुखद है। क्योंकि दूर से उन चीजों को पूरा-पूरा नहीं देख पाते। असल में दूर से हम ठीक-से देख ही नहीं पाते। थोड़ा-सा देख पाते हैं, बहुत नहीं देख पाते। जो हम देख पाते हैं, वह हम अपना सपना ही उसकी जगह रख देते हैं। दूर से हम एक व्यक्ति को देखते हैं, दीखती है रूप-रेखा, लेकिन बहुत-कुछ हम अपने से उसमें जोड़ देते हैं। जो हमने ही जोड़ा है, जिसमें दूसरे व्यक्ति का कोई कसूर नहीं है जो हमने ही जोड़ा है, लेकिन निकट आने पर जो हमने जोड़ा था पिघलकर बहने लगा। निकट आने पर जो हमने सपना जोड़ दिया था, काव्य जोड़ दिया था, वह मिटने लगेगा। जैसा व्यक्ति था, वैसा प्रगट

होगा। ऐसा हमने कभी भी नहीं सोचा था। असल में हम सोच भी कैसे सकते हैं, दूसरा व्यक्ति कैसा होगा? हम सिर्फ कामना कर सकते हैं कि ऐसा हो, लेकिन हमारी कामनाओं के अनुकूल न किसी व्यक्ति का जन्म हुआ है; उस व्यक्ति का जन्म उसकी अपनी कामनाओं के अनुकूल हुआ है।

कोई किसी दूसरे व्यक्ति की इच्छाओं के अनुकूल पैदा नहीं हुआ है इस जगत् में, प्रत्येक व्यक्ति अपनी इच्छाओं के अनुकूल पैदा हुआ है। लेकिन हमने अपनी इच्छाएँ आरोपित की थीं। वे मिलते ही खंडित हो जायेंगी। और वह व्यक्ति प्रगट होगा, जैसा हमने उसे कभी भी नहीं जाना था। और जितने हमने सपने जोड़े थे, वास्तविकता उन सबको तोड़ देती है। एक-एक चीज को तोड़ देती है। फिर हमने चाहा था कि व्यक्ति पूरा मिल जाये—यानी मैं कहूँ रात, तो वह कहे 'रात'; मैं कहूँ दिन, तो वह कहे 'दिन'। यह इच्छा पूरी नहीं होगी, क्योंकि ऐसा व्यक्ति ही खोजना कठिन है कि आप जो कहें, वैसा ही हो जाये।

और मजे की बात यह है कि उसने भी यही कामनाएँ की थीं कि मैं कहूँ रात तो रात, और मैं कहूँ दिन तो दिन। दोनों के प्रेम की कसौटी यही थी! उसकी भी यही थी। और तब बड़ी मुश्किल हो गयी बात। क्योंकि आप भी उससे कहलवाना चाहते हैं, वह भी आपसे कहलवाना चाहता है। और सोचा था शाँति, और होगा संघर्ष; सोचा था सुख, और होगा विषाद।

लेकिन मजे की बात यह है, हम यह कहेंगे : यह तो इसलिए हो रहा है कि मैंने जो चाहा था, वह नहीं हो सका। मैंने चाहा था कि मैं कहूँ रात तो वह भी कहे रात, तो यह नहीं हो सका, इसलिए मैं दुखी हूँ। इच्छा के कारण दुखी नहीं हूँ, गलत व्यक्ति मिल गया! गलत व्यक्ति मिल गया, इच्छा पूरी नहीं होती, इसलिए दुखी हूँ।

इच्छा का तर्क यही है। उसका तर्क यही है कि वह पूरी हो नहीं रही है, इसलिए तुम दुखी हो। काश, पूरी हो जाती तो सुख आता। काश! दूसरा व्यक्ति मिल जाता।

लेकिन समझो एक क्षण को कि इच्छा पूरी हो गयी—कि तुमने कहा रात, तो उस दूसरे व्यक्ति ने कहा रात—हालाँकि दिन था! तुमने उसके पैर में जंजीरें बाँधी; तुमने कहा, आभूषण, तो उसने कहा, आभूषण। तुमने उस व्यक्ति को पाया कि वह तुम्हारे बिल्कुल ही—तुम जैसे हो, वैसा ही

है--तुम्हारी छाया।

और मजे की बात यह है कि ऐसे व्यक्ति को पाकर जितना दुख होगा, उसका हम अनुमान नहीं लगा सकते; क्योंकि वह व्यक्ति ही नहीं होगा, वह एक मशीन होगा, वह एक यन्त्र होगा। उसमें कोई व्यक्तित्व नहीं होगा, उसमें कोई आत्मा नहीं होगी। और जिस व्यक्ति में कोई आत्मा नहीं है, और जिसमें कोई व्यक्तित्व नहीं है, उससे तुम प्रेम कर पाओगे?... उससे तुम एक क्षण प्रेम नहीं कर सकते।

यह जो इच्छा पूरी हो जाये तो जितना दुख होगा, उतना इच्छा के पूरी होने से कभी भी नहीं होगा।

कोई भी छाया नहीं खरीदना चाहता; हम व्यक्ति चाहते हैं। मगर हमारी इच्छा बड़ी अनूठी है! हम ऐसा व्यक्ति चाहते है, जो हमारी माने। इन दोनों बातों में कोई मेल ही नहीं है। अगर वह व्यक्ति होगा तो वह अपने ढंग से जियेगा, और अगर हमारी मानेगा तो व्यक्ति नहीं होगा। उसमें कोई आत्मा नहीं होगी, वह मरी हुई चीज होगी। वह फर्नीचर की तरह होगा, जिसे कहीं भी उठाकर रख दिया, वह वहीं रखा रह गया।

यह मैंने उदाहरण के लिए कहा। हमारी कोई भी इच्छा यदि पूरी हो जाये--समझ लें, इसको छोड़ दें, एक दूसरा उदाहरण ले लें।

एक आदमी गरीब है और वह कहता है कि इसलिए मैं दुखी हूँ कि जितना धन मैं चाहता हूँ, उतना मुझे नहीं मिलता। अगर मुझे उतना धन मिल जाए तो मैं दुखी न रहूँ। ठीक है, उसे उतना धन दे दिया जाये। पहली तो बात यह है, उतना धन मिलने पर उसकी इच्छा आगे चली जायेगी। वह कहेगा, इतने से क्या होता है? यह तो कुछ भी नहीं है! और चाहिए, और चाहिए। समझ लें कि उसकी इच्छा है कि सारे जगत् का धन उसे मिल जाये। यह पूरी नहीं होती, इसलिए बड़ा दुख है। समझ लें कि एक आदमी की इच्छा पूरी हो जाये कि उसे सारी पृथ्वी का धन मिल जाये--क्या आपको पता है, वह कितना दुख झेलेगा?

आपको कल्पना भी नहीं है; क्योंकि धनी होने का मजा इसमें था—धनी होने का मजा ही इसमें था कि दूसरे धनियों को पीछे छोड़ा। धनी होने का मजा इसमें था कि प्रतियोगिता थी, प्रतिस्पर्द्धा थी, कम्पिटीशन था; उसमें हम जीते। अगर एक व्यक्ति को सारी पृथ्वी का धन मिल जाये

उसकी इच्छा के अनुकूल, तो वह व्यक्ति एकदम उदास हो जायेगा; क्योंकि न कोई प्रतिस्पर्द्धा है, न कोई प्रतिस्पर्द्धा का उपाय है। अगर सारी पृथ्वी का धन एक व्यक्ति को मिल जाये तो आत्महत्या कर लेगा; क्योंकि वह कहेगा, अब क्या, अब क्या करें? और वह इतना उदास हो जायेगा...!

सिकन्दर के सन्दर्भ में एक कथा है : कि सिकन्दर से डायोजनीज ने कहा कि यदि तूने सारी पृथ्वी जीत ली तो सोचा है कि क्या होगा? सिकन्दर ने कहा, अभी तो जीतना ही मुश्किल है। लेकिन डायोजनीज ने कहा, समझ ले, जीत ही ली, फिर क्या होगा? क्योंकि दूसरी पृथ्वी नहीं है जीतने को। और कहानी है कि सिकन्दर एकदम उदास हो गया! उसने कहा, यह मैंने कभी ख्याल नहीं किया। लेकिन सच ही, अगर पूरी पृथ्वी जीत ली तो फिर? दूसरी पृथ्वी तो नहीं है,...फिर क्या करूँगा! वह डायोजनीज से पूछने लगा, फिर क्या करूँगा? यह तो तुम ठीक कहते हो, लेकिन ऐसी चिन्ताएँ मत उठाओ, क्योंकि इस पृथ्वी को जीतना बहुत मुश्किल है। ऐसी चिन्ताएँ भी मत उठाओ! लेकिन डायोजनीज ने कहा, यह चिन्ता उठाने-जैसी हैं; क्योंकि कामना तेरी यह है कि मैं सारी पृथ्वी को जीतकर सुखी हो जाऊँ। मैं यह कहता हूँ, मान ले, तूने सारी पृथ्वी जीत ली, अब तू सुखी होगा कि दुखी हो जायेगा? और डायोजनीज खूब हँसने लगा, उसने कहा कि जब होगा होगा, लेकिन तू अभी दुखी हो गया--यह बात सोचकर कि सारी पृथ्वी जीत ली तो फिर? यह सवाल है कि फिर क्या?

हमारी इच्छाएँ पूरी नहीं होती हैं तो हम दुख पाते हैं, और हमारी इच्छाएँ पूरी हो जायें तो हम परम-सुख पायेंगे? लेकिन हम यही समझते हैं कि हम दुख पाते हैं कि हमारी इच्छाएँ पूरी नहीं होतीं।

टालस्टाय ने एक कहानी लिखी है : एक बाप की तीन बेटियाँ हैं। तीनों की अलग-अलग जगह शादी हो गयी है। एक लड़की किसान के घर है; एक लड़की एक कुम्हार के घर है; एक लड़की एक जुलाहे के घर है, जो कपड़े बुनता है और रंगता है। वर्षा आने के दिन हैं, लेकिन वर्षा नहीं आयी। कुम्हार बड़ा खुश है, उसकी पत्नी भगवान को धन्यवाद दे रही है कि भगवान्, तेरा धन्यवाद; क्योंकि हमारे सब घड़े बनाये हुए रखे हैं, अगर वर्षा आ गयी तो हम मर जायेंगे—एक आठ दिन पानी रुक जाये; हमारे सब घड़े पक जायें, बाजार चले जायें। लेकिन किसान की पत्नी बड़ी परेशान

है, क्योंकि खेत तैयार है और पानी नहीं गिर रहा है। और अगर आठ दिन की देर हो गयी तो फिर फसल बोने में देरी हो जायेगी। और फिर बड़ा मुश्किल हो जायेगा। वैसे ही बहुत देर हो गयी है और सब मुश्किल हो गयी है। वह भगवान से रोज कहती है कि हे भगवान्, तू यह कर क्या रहा है! मेरे बच्चे भूखे मर जायेंगे, तू पानी जल्दी गिरा। वह जो तीसरी लड़की है, वह जुलाहे के घर है। उसके कपड़े तैयार हो गये हैं। उसने रंग कर लिया है और वह भगवान से कहती है: अब तेरी मर्जी; चाहे आज गिरा, चाहे कल गिरा, हमें कोई फर्क नहीं पड़ता है। अब कोई बात नहीं है, क्योंकि उसका काम पूरा हो गया है, उसकी तैयारी पूरी हो गयी है; उसने काम अपने घर में समेट लिया है। और वह हाथ जोड़ के भगवान से कहती है, अब तेरी मर्जी, अब आज गिरा या कल, हमारा काम पूरा हो गया; हर हालत में हम खुश हैं। अब पानी आज गिरे कि कल, कोई फर्क नहीं पड़ता है।

कहानी है, भगवान अपने देवताओं से पूछता है कि बोलो, मैं क्या करूँ? मैं किसकी इच्छाएँ पूरी कर दूं? और भगवान कहता है: यह तो सिर्फ तीन लोग हैं, अगर सारी पृथ्वी के लोगों की इच्छाएँ पूछी जायें, और सब पूरी कर दी जायें तो इसी वक्त पृथ्वी समाप्त हो जाये—इसी वक्त।

हमारी इच्छाएँ और हमारी इच्छाओं का दौर और हम उनसे क्या पाना चाह रहे हैं, हमें कुछ भी पता नहीं है। लेकिन भ्रांति चलती चली जाती है; क्योंकि हमारा ख्याल यह होता है कि दुख मिल रहा है इसलिए कि इच्छा पूरी नहीं हुई; सुख मिलता अगर इच्छा पूरी हो जाती। लेकिन जो गहरे इस विचार में उतरेगा उसे पता चल जायेगा कि कोई इच्छा की पूर्ति सुख नहीं ला सकती, और बड़ा दुख लाती है। अपूर्ति इतना दुख ला रही है तो पूर्ति कितना लाती? गणित ऐसा समझना चाहिए—नहीं पूरा हुआ तो इतना दुख मिल रहा है, पूरा हो जाता है तो कितना दुख मिलता? क्योंकि जब बीज को कम सुविधा मिली, तब वह इतना जहरीला फल ले आया, पूरी सुविधा मिलती तो कितना जहर लाता?

प्रत्येक इच्छा दुख में ले जाती है, लेकिन सुख में ले जाने का आश्वासन देती है। प्रत्येक नाव दुख की है, लेकिन सुख के घाट पर उतार देने का वचन है। और हजार उन नावों में बैठते हैं रोज और हजार बार दुख की नाव दुख के घाट पर उतार देती है, लेकिन हम कहते हैं: कहीं कोई भूल हो गयी

है, अन्यथा ऐसा कैसे हो सकता था कि जो नाव सुख के घाट की तरफ चली थी, वह दुख के घाट पर कैसे पहुँच जाती! लेकिन हम यह कभी नहीं पूछते कि कहीं नाव ही तो दुख की नहीं है?

सवाल घाट का है ही नहीं। सवाल घाट का है नहीं; सवाल यह है ही नहीं कि आप कहाँ पहुँचेंगे, सवाल यह है कि आप कहाँ से चलते हैं, आप किस पर सवार हैं? यह सवाल है नहीं कि फल कैसा होगा, सवाल यह है कि बीज कैसा बोया है?

जीसस कहते हैं: जो बोओगे, वही तुम काटोगे, लेकिन काटते वक्त पछताना मत; पछताना हो तो बोते वक्त। काटते वक्त पछताने का क्या सवाल है? फिर तो काटना ही पड़ेगा। लेकिन हम सब काटना कुछ और चाहते हैं, बोते कुछ और हैं। और यह जो द्वन्द्व है चित्त का, कि बोते कुछ और हैं, काटना कुछ और चाहते हैं—यह हमें भटका सकता है अनन्त काल तक, अनन्त जन्मों तक। इस भ्रम को तोड़ देने की जरूरत है, इससे जाग जाने की जरूरत है। और यह सूत्र समझ लेने की जरूरत है कि जो हम बोते हैं, वही हम काटते हैं। हो सकता है बीज पहचान में न आता हो, क्योंकि बीज जाहिर नहीं है, अप्रगट है; अनमेनिफेस्ट है; अभी अभिव्यक्त नहीं हुआ है। यहाँ एक बीज रखा हुआ है, हो सकता है हम न पहचान सकें कि इसका वृक्ष कैसा होगा; क्योंकि बीज में वृक्ष है, लेकिन दिखायी नहीं पड़ता।

तो जीसस कहते हैं: जो तुम बोते हो, वही तुम काटते हो। मैं इससे उल्टी बात भी जोड़ देना चाहता हूँ कि जो तुम काटो, समझ लेना कि वही तुमने बोया था; क्योंकि हो सकता है बोते वक्त तुम न पहचान सके होओ। बोते वक्त पहचानना जरा कठिन भी है; क्योंकि बीज में कुछ दिखायी नहीं पड़ता साफ-साफ कि बीज क्या होगा—जहर होगा कि अमृत होगा?

तो हो सकता है, बोते वक्त भूल हो गयी हो, लेकिन काटते वक्त तो भूल हो ही नहीं सकती। हो सकता है नाव में बैठते वक्त ठीक-से न समझ पाये हों कि नाव क्या है, लेकिन घाट पर उतरते वक्त तो समझ ही पायेंगे कि घाट कैसा है; नाव ने हमें कहाँ पहुँचा दिया, यह तो समझ में आ जायेगा।

तो काटते वक्त देख लेना। अगर दुख कटा हो, तो जान लेना कि दुख बोया था। और तब जरा समझने की कोशिश करना कि आगे दुख के बीज

को तुम पहचान सको कि वह कौन-कौन से बीज हैं जो दुख ले आते हैं। कितनी बार ईर्ष्या दुख लाती है, कितनी बार घृणा दुख लाती है, कितनी बार क्रोध दुख लाता है, लेकिन हम हैं कि बीज उन्हीं के बोये चले जाते हैं! और बार-बार हम पछताते हैं कि यह दुख क्यों? दुख हमें झेलना नहीं है और बीज हमें दुख के ही बोने हैं! और इस द्वन्द्व में कितना समय हम व्यतीत करते हैं और कितने जन्म, और कितने जीवन! लेकिन द्वन्द्व हमें दिखायी नहीं पड़ता; क्योंकि हमारी खूबी यह है, हमारा मजा यह है, हमारा डिलूजन, वह जो सेल्फ डिसेप्शन है, आत्मवंचना है, वह यह कि हम सिर्फ, जो कटता है, उस वक्त नाराज होते हैं कि यह गलत चीज कटी, लेकिन हमने जो बोया था, उसका ख्याल ही नहीं करते!

अगर गलत कटा है तो गलत बोया था। और इसके, दोनों के तारतम्य को समझ लेना जरूरी है, ताकि गलत न बोयें। जिस घाट पर हम उतरें, वह खबर हमारी नाव की है कि हम किस नाव पर बैठ गये। लेकिन हम कल फिर उसी नाव पर बैठते हैं और दूसरे घाट पर फिर उतरने की कल्पना करते हैं, और आश्चर्यजनक है यह कि आदमी रोज-रोज वही-वही भूल करता है। नयी भूलें भी आदमी नहीं करते! नयी भूल भी कोई करे तो भी कहीं पहुँच जाये। भूल भी पुरानी ही करते हैं। लेकिन कुछ ऐसा है कि पीछे जो किया हुआ है, वह हम भूल जाते हैं और फिर-फिर हम वही सोचने लगते है।

एक आदमी ने अमरीका में आठ विवाह किये। उसने पहला विवाह किया--और बड़ी आशाओं से, जैसा कि सभी लोग करते हैं--बड़ी आशाओं से, लेकिन सब आशाएँ छः महीने में मिट्टी में मिल गयीं। तो उसने समझा कि औरत गलत मिल गयी। जैसा कि सभी आदमी समझते हैं, उसने भी समझा कि स्त्री गलत मिल गयी, सब आशाएँ धूमिल हो गयीं। आशाएँ गलत थीं--ऐसा नहीं; स्त्री गलत मिल गयी। तो उसने तलाक दे दिया। दूसरी स्त्री फिर सालभर लगाकर उसने बमुश्किल खोजी। अब वह बड़ा खुश था, क्योंकि अब पहले अनुभव के बाद उसने खोजबीन की थी। शादी की फिर उतनी ही आशाओं के साथ, लेकिन पाया कि छः महीने में सब गड़बड़ हो गया। तब उसने समझा कि फिर स्त्री गलत मिल गयी।

ऐसे उस आदमी ने आठ शादियाँ की जीवन में, और हर बार वही हुआ।

आठवीं शादी के बाद वह एक मनोवैज्ञानिक के पास गया और उसने कहा कि मैं बड़ी मुश्किल में पड़ गया हूँ। मैं आठ विवाह कर चुका और जिन्दगी गँवा चुका। अब तो उपाय भी नहीं और करने का। लेकिन हुआ क्या, मुझे हर बार वैसी-की-वैसी औरत मिल गयी?—और मैंने इतनी खोजबीन की!

उस मनोवैज्ञानिक ने कहा, वह तो ठीक है, लेकिन तुम्हारे खोजबीन के मापदण्ड क्या थे? कसौटी वही थी तुम्हारी, जिससे तुमने पहली औरत को कसा था। तो कसौटी फिर वही रही होगी, जिससे तुमने दूसरी को कसा। और तुम हर बार उसी टाइप की स्त्री को खोज लाये, जिस टाइप की स्त्री को तुम खोज सकते थे। तुम जिस तरह के आदमी हो, उस तरह का आदमी जैसी स्त्री खोज सकता था, वैसी खोज लाये।

हो सकता है, बहुत सम्भावना है कि बहुत पुराने दिनों में इसी अनुभव के आधार पर एक ही विवाह की व्यवस्था कर ली गयी हो; क्योंकि एक आदमी एक ही तरह की स्त्री खोज सकता है, साधारणता। इसमें कोई फर्क नहीं पड़ता। वह हर बार सिर्फ--नाम बदल जायेगा, शक्ल बदल जायेगी, लेकिन स्त्री वह वैसी ही खोज लायेगा। उसकी जो खोज का दिमाग है, उस दिमाग से वह वैसी स्त्री फिर खोज लायेगा। इसलिए बार-बार फिजूल की परेशानी में क्यों पड़ना। कुछ समझदार लोगों ने कहा हो, एक ही विवाह काफी है एक जन्म के लिए। तुम एक ही दफा खोज लो और वही बहुत है। और यह भी हो सकता है कि इसी अनुभव के आधार पर कि व्यक्ति जो भी खोजेगा, वह जो कि उसका पहला अनुभव होगा, इसलिए भूल उससे निश्चित हो जानी है। इसलिए जिनके अनुभव हो चुके उनके माँ-बाप खोजते हैं। इस सबके पीछे, जो कि इस अनुभव से गुजर चुके हैं और जो लोग भोग चुके हैं और नासमझी झेल चुके हैं, वह शायद ज्यादा ठीक-से खोज सकें। और यह आदमी की पहली खोज है जो कि गलत हो जायेगी। इसकी बहुत सम्भावना है। इसलिए हो सकता है कि वह माँ-बाप पर छोड़ दिया गया हो।

इधर निरन्तर के अनुभव के बाद अमरीका में कुछ मनोवैज्ञानिक यह कहने लगे हैं कि बाल-विवाह शुरू कर दो। क्योंकि इसमें कोई मतलब नहीं मालूम पड़ता है, यह दुखद है बात, यह बात दुखद है कि बाल-विवाह हो। यह बात भी दुखद है कि माँ-बाप बच्चे का विवाह तय करें। लेकिन

जैसी स्थिति है, उसमें यही सुखद मालूम पड़ता रहा है। इससे भिन्न होना अभी कठिन है। और वह तब हो सकता है, जब हम दुख के बीजों को समझ लें। तो हम जो खोज करें, वह बहुत और तरह की होगी। हम जिस नाव पर सवार हों, वह और तरह की हो।

सुख और दुख को अलग मत समझना, सुख और दुख को एक समझना। हाँ, जरा देरी लगती है दोनों के पकने में। फासला है, फासले की वजह से दो समझ लिये जाते हैं। दृष्टि छोटी है हमारी, फासला बड़ा है। हमें किसी कमरे की दोनों दीवालें दिखायी पड़ती हैं तो हम जानते हैं, दोनों दीवालें इसी कमरे की हैं। और हम ऐसी भूल न करेंगे कि इस दीवाल को बचा लें और उसको मिटा दें। क्योंकि ऐसी भूल हम करेंगे तो वह दीवाल भी गिरेगी और यह पूरा मकान भी गिरेगा। अगर दीवाले गिरानी हों, दोनों गिरा दो; न गिरानी हों तो दोनों को बचने दो। क्योंकि हमें दोनों दीवालें दिखायी पड़ती हैं। लेकिन कमरा इतना बड़ा हो सकता है कि जब भी हमें दिखायी पड़ती हो, एक ही दीवाल दिखायी पड़ती हो। दूसरी दीवाल इतने फासले पर हो कि हम कभी जोड़ ही न पाते हों कि यह कमरा और यह दीवाल उसी दीवाल से जुड़ी है--यह वही कमरा है।

और जिन्दगी बड़ी है, उसमें फासले बड़े हैं, और आदमी की दृष्टि बड़ी छोटी है। ज्यादा दूर तक वह देख नहीं पाता। उसे खबर नहीं हो पाती कि कब मैंने क्या बोया था, कब मैं क्या काट रहा हूँ। कब मैंने एक मकान बनाया था, उसकी यह दूसरी दीवाल है। और ये दोनों एक हैं। इसको ठीक-से पर्सपेक्टिव मिल जाये, दृष्टि मिल जाये दूर तक देखने की तो हम अपने सब दुखों को, अपने सुखों के सपने में छिपा हुआ पायेंगे। हमारे सब दुख, हमारे सुख की आशाओं में ही पैदा किये गये हैं। हमारे सब दुख, हमने ही सुख की सम्भावनाओं में बोये थे। काटते वक्त दुख निकले। सम्भावआएँ सुख की थीं और बीज हमने दुख के ही बोये थे।

इसे हम देखें, अपनी जिन्दगी में खोजें। अपने दुख को देखें और अपने पीछे लौटकर देखें कि हम कैसे उनको बोते चले आये हैं। और कहीं ऐसा तो नहीं कि आज भी हम वही कर रहे हैं! अगर यह दिखायी पड़ जाये तो तुम सुख की आशा छोड़ दोगे।

सुख की आशा एकदम ही दुराशा है, असम्भावना है।

सुख की सम्भावना ही नहीं है।

अगर ऐसा दिखायी पड़ जाये कि जीवन में सुख की सम्भावना ही नहीं है, दुख ही होगा--चाहे तुम उसे कितना ही सुख कहो, आज नहीं कल वह दुख हो जायेगा। अगर जिन्दगी में दुख की ही सम्भावना है तो सुख की आशा छूट जाती है। और जिस व्यक्ति की सुख की आशा छूट जाती है, वह दुख के साथ सीधा खड़ा हो जाता है। भागने का उपाय न रहा। यहाँ दुख है और यहाँ मैं हूँ, और हम आमने-सामने हैं।

और मजे की बात यह है कि जो आदमी दुख के सामने सीधा खड़ा हो जाता है, उसका दुख ऐसे तिरोहित हो जाता है कि जैसे कभी था ही नहीं। तब दुख नहीं जीत पाता, क्योंकि तब दुख के जीतने की तरकीब ही गयी। तरकीब थी सुख की सम्भावना में। दुख के जीत की जो तरकीब थी, जो टेकनीक थी, वह थी सुख की सम्भावना में। वह सुख की सम्भावना न रही, दुख यह सामने रहा और मैं वह खड़ा हूँ, और अब कोई उपाय नहीं है--न मेरे भागने का, न दुख के भागने का--और दुख और हम आमने-सामने हैं। यह एनकाउन्टर है, यह साक्षात्कार है। इस साक्षात्कार में जो रहस्यपूर्ण घटना घटती है, वह यह कि दुख तिरोहित हो जाता है। मैं अपने पर वापस लौट आता हूँ, क्योंकि सुख पर जाने की चेष्टा छोड़ देता हूँ। सुख के जाने का एक रास्ता था, वह रास्ता मैंने छोड़ दिया। अब दुख के सामने सीधा खड़ा हो गया, अब एक ही रास्ता है कि मैं अपने पर लौट जाऊँ।

और यह जो अपने पर लौट आना है--क्योंकि दुख में कोई रह नहीं सकता--या तो सुख की आशा में भागेगा, या अपने पर लौट आयेगा; या तो आनन्द में चला जायेगा, या सुख में चला जायेगा। सुख में हम जाते रहे हैं, और हम आनन्द में नहीं पहुँच पाये हैं। अगर हम दुख में सीधे खड़े हो जायें, तो हम आनन्द में पहुँच जाते हैं।

आनन्द सुख नहीं है, आनन्द सुख-दुख का अभाव है।

आनन्द न सुख है, न दुख है। इसीलिए बौद्धों ने आनन्द शब्द का प्रयोग नहीं किया। बुद्ध ने बड़ी समझ के शब्दों का प्रयोग किया। इतनी समझ किसी आदमी ने कभी नहीं दिखायी, क्योंकि आनन्द में कितना ही समझाओ, सुख का भाव छिपा हुआ है। यानी कितना ही मैं समझाऊँ कि आनन्द सुख

नहीं है, आप फिर भी कहेंगे, आनन्द कैसे मिले। और जब आप कहेंगे, तब आपके मन में यही होगा कि सुख कैसे मिले। शब्द बदल लेंगे, लेकिन भाव सुख का ही रहेगा। आप कहेंगे : फिर ठीक है, फिर तरकीब बताइये कि आनन्द कैसे पाया जाये। दुख है, दुख से कैसे बचा जाये। कोई टेकनीक, कोई विधि बताइये कि हम आनन्द कैसे पा लें। आनन्द तो पाना जरूरी है। और अगर आप गौर से देखेंगे, तो आनन्द,...गलत शब्द आप प्रयोग कर रहे हैं। आप यह कह रहे हैं, सुख पाना जरूरी है, सुख कैसे पाया जाये, दुख से कैसे बचा जाये। बहुत कठिन है आदमी को समझाना कि आनन्द सुख नहीं है। और आमतौर से हम दोनों का पर्यायवाची प्रयोग करते हैं कि आदमी सुखी है तो कहता है, बड़े आनन्द में है।...बड़े आनन्द में है, कहता है!

बुद्ध ने इसके लिए प्रयोग किया 'शान्ति'। वे कहते हैं, आनन्द नहीं, आनन्द शब्द ठीक नहीं है, खतरनाक है। शान्ति में भाव बिल्कुल दूसरा है। शान्ति का अर्थ है, न सुख, न दुख--सब शान्त है। कोई तरंग नहीं है--न दुख की, न सुख की। कोई भाव नहीं है--न सुख का, न दुख का। न कहीं जाना है, न कहीं आना है। ठहर गया सब, रुक गये। मौन है, चुप है। झील पर एक भी लहर नहीं है।

इसलिये बुद्ध कहते हैं : आनन्द नहीं, मैं आनन्द का आश्वासन नहीं देता। क्योंकि मैं तुम्हें आनन्द का आश्वासन दूंगा, तुम सुख का आश्वासन ले लोगे। तो कठिनाई है, बात आनन्द की की जायेगी, समझी सुख की जायेगी; क्योंकि हमारी आकांक्षा सुख की है। अगर हम दुख के साक्षात्कार के लिए भी तैयार होंगे, तो सिर्फ इसलिए कि दुख से कैसे बच जायें। और अगर कोई दुख से बचने के लिए दुख का साक्षात्कार करेगा, तो साक्षात् कर ही नहीं सकता, क्योंकि जिससे हम बचना चाहते हैं, उसका हम कैसे साक्षात् करेंगे? उसे हम देखेंगे कैसे उसकी परिपूर्णता में? हम तो भाग जायेंगे इसके पहले कि वह दिखायी पड़े।

मुझे भी प्रीतिकर है शब्द 'शान्ति' ही; महत्त्वपूर्ण भी है। मगर बात वही है, जहाँ सब शान्त हो गया--सब; दुख भी नहीं, सुख भी नहीं--जहाँ सब शान्त हो गया। हमें ख्याल में नहीं है कि दुख एक तरह की अशान्ति है, जो अप्रीतिकर है; और सुख एक तरह की अशान्ति है, जो प्रीतिकर लगती है। लेकिन सुख की अशान्ति भी तीव्र हो जाये तो मृत्यु

ला सकती है, और दुख की अशान्ति भी तीव्र हो तो भी मृत्यु ले आती है।

मैंने सुना है, एक आदमी को लॉटरी मिल गयी। उसे एक लाख रुपये मिलने को हैं। उसकी पत्नी बहुत घबड़ा गयी। जब खबर आयी, पति दफ्तर में था। वह चपरासी है। एक लाख की बात सुनते ही कहीं उसका खात्मा न हो जाये! खबर आ गयी है घर में। पति दफ्तर से लौटने को है। वह क्या करे? तो वह भागी हुई पास के चर्च में गयी। वह ईसाई है। उसने जाकर चर्च के पादरी को कहा : आप बुद्धिमान आदमी हैं, आपसे सलाह लेने मैं आयी हूँ : क्या किया जाये? खबर आयी है, मेरे पति को एक लाख रुपया मिल गया है। फिर हम गरीब आदमी हैं और पति एक लाख रुपये की बात सुनकर पागल हो जाये,...? हृदय गति बन्द हो जाये,...

उस चर्च के पुरोहित ने कहा, घबड़ाओ मत, मैं आता हूँ; सम्हाल लूंगा,...धीरे-धीरे प्रकट करूँगा।

दफ्तर से पति लौट आया है। वह चर्च का पादरी आया है। उस पादरी ने कहा, सुनते हो भाई! पच्चीस हजार रुपये मिले हैं तुम्हें इनाम! सोचा कि धीरे-धीरे बढ़ाऊँगा, धक्का कम होता जायेगा—पच्चीस हजार से पचास हजार। उस आदमी ने कहा : पच्चीस हजार!...सच? अगर पच्चीस मिले हैं तो आधा मैं आपको दे दूंगा। पादरी का उसी वक्त हार्ट फेल हो गया।...साढ़े बारह हजार! और इकट्ठा हमला पड़ गया उस पर। क्योंकि उसने कल्पना भी नहीं की थी। इस आदमी को तो थोड़ा ख्याल भी था। उसको थोड़ा ख्याल भी था कि लॉटरी मिल सकती है। लेकिन पादरी को तो ख्याल भी नहीं हो सकता था कि साढ़े बारह हजार मिल सकते हैं। उसने कहा, साढ़े बारह हजार! सच कह रहे हो? उसने कहा कि अगर लॉटरी मिल गयी पच्चीस की तो दिये। उस आदमी का हार्ट फेल हो गया।

सुख भी इतना तीव्र हो सकता है, एक आघात में कि प्राण ले ले। और बड़े मजे की बात है यह कि दुख बहुत कम लोगों के प्राण लेता है, सुख बहुत लोगों के ले लेता है। सुख बहुत लोगों के ले लेता है, दुख बहुत कम लोगों के लेता है, क्योंकि दुख में--कितना ही बड़ा दुख हो—हम सदा सुख की आशा में भागे हुए रहते हैं। इसलिए पूरे दुख का कभी भी इम्पैक्ट, प्रभाव नहीं पड़ पाता। लेकिन पूरे सुख में हम कहीं नही भागे होते हैं, हम बिल्कुल थक गये होते हैं। हमला पूरा हो जाता है, हम बच ही नहीं पाते; क्योंकि

हम दुख की तरफ तो भागते नहीं। दुख में तो हम सुख की तरफ भागते रहते हैं। मन हमारा सुख में लगा रहता है कि ठीक है, ठीक है, आज नहीं कल, आज नहीं कल सुख आयेगा, आयेगा। हम वहाँ होते हैं, यहाँ दुख होता है। दुख की चोट हम पर हमला कभी नहीं कर पाती, लेकिन सुख की चोट बहुत बुरा हमला कर जाती है; क्योंकि हम कहीं नहीं होते, वहीं होते हैं, उसी वक्त सीधा मुकाबला हो जाता है।

सुख भी एक अशान्ति है। प्रीतिकर हम समझ सकते हैं उसे। हम चाहते हैं, ऐसी अशान्ति। इसे अगर हम ठीक-से समझें, तो हम चाहते हैं ऐसी अशान्ति। और अशान्ति को चाहना--कितनी देर चाहोगे? घड़ी, आधा घड़ी में चाह मिट जायेगी, अशान्ति रह जायेगी। समझ लीजिये, अभी आप सब मिल कर इतना खुश हो रहे थे। इसे जरा चलने दीजिये। और घण्टे भर रहे। और फिर लोग उठने लगेंगे। और दरवाजा बन्द कर दीजिये कि आज तो पूरी रात खुशी मनानी है। तो फिर आप पायेंगे कि दो घण्टे बाद लोग कहेंगे हैं कि हम गर्दन दबा देंगे, अगर किसी ने गड़बड़ की। हमको बिल्कुल हँसना नहीं। हमें बिल्कुल बाहर जाना है, हम सुनना नही चाहते।--क्यों? क्योंकि थोड़ी देर हम अशान्ति को भी चाह सकते हैं। तो कितनी देर? थोड़ी देर में चाह चली जायेगी और अशान्ति रह जायेगी।

एक आदमी सितार बजा रहा है। बड़ा प्रीतिकर है, लेकिन है तो शोर गुल,... है तो शोरगुल ही। कितनी देर सहोगे, अशान्ति ही है। जो शान्ति को जानता है, वह कहेगा : यह क्यों शोरगुल मचा रहे हो? यह है शोरगुल। लेकिन समझो कि अच्छी लग रही है, प्रीतिकर अशान्ति है। थोड़ी देर चाही जा सकती है! चाहो, कितनी देर चाहोगे?--घड़ी, दो घड़ी; घण्टे, दो घण्टे; रात, दो रात? फिर उस सितार बजानेवाले की गर्दन दबाने का मन होगा कि अभी या तो बन्द करो, या तो हम तुम्हें बन्द कर देंगे। बजानेवाला कहेगा तुम तो इतने खुश होते थे, तुम तो इतने प्रभावित थे और तुम तो इतना आनन्द प्रगट करते थे, ताली बजाते थे--गर्दन क्यों दबाते हो? हम तो उसी खुशी में और ज्यादा बजाये चले जा रहे हैं। लेकिन उस आदमी को पता नहीं कि अशान्ति की चाह खत्म हो जाती है थोड़ी देर में, और फिर अशान्ति रह जाती है, और फिर तबियत होती है कब बन्द हो जाये; अब यह कब समाप्त् हो।

प्रीतिकर अशान्ति को हम सुख कहते हैं, अप्रीतिकर अशान्ति को हम दुख कहते हैं। और इसे ध्यान रखना, अगर प्रीतिकर अशान्ति को जारी रखा जाये तो प्रीतिकर बिन्दु नष्ट हो जायेगा, शान्ति रह जायेगी। और अगर अप्रीतिकर अशान्ति को भी जारी रखा जाये तो अप्रीतिकर बिन्दु नष्ट हो जायेगा और अशान्ति भी सहने-योग्य प्रीतिकर हो जायेगी।

एक आदमी रेल के दफ्तर में काम करता है तो सितार नहीं सुनता है। रेलगाड़ी के इंजन की सीटियाँ और सब आवाजें सुनता है। वहीं सोता भी है, रात सो भी लेता है। सात दिन की ड्यूटी के बाद घर लौटता है, आठवीं रात नींद नहीं आती! क्योंकि वह जो अशान्ति थी, वह जो शोरगुल था, वह उसके माहोल का हिस्सा था। उसके बिना सोये कैसे? वह एक बड़े वातावरण का हिस्सा भी है। उतनी अशान्ति चाहिए, नहीं तो वह सो नहीं सकता। वह मुश्किल में पड़ जायेगा। वह सब हिस्सा हो गया। वह भी, बहुत दिन सुने जाने पर प्रीतिकर अप्रीतिकर हो जाता है, अप्रीतिकर प्रीतिकर भी हो सकता है। इसका मतलब क्या है? इसका मतलब यह है कि दोनों तनाव हैं और दोनों तनाव में रूपान्तरण हो सकता है। वे एक-दूसरे में यात्रा करते रहते हैं।

अभी एक मित्र मेरे पीछे आकर यहाँ ठहरे थे, पूना के। उन्होंने कहा कि वे एक दिन के लिए हाउस बोट में ठहरे थे आकर, बहुत आनन्द आया। फिर दूसरी दफा आये तो हमने पन्द्रह दिन के लिए इकट्ठा ही बुक कर लिया और पैसे दे दिये। और हम ऐसी मुसीबत में पड़ गये कि ये पन्द्रह दिन कैसे पूरे हों! क्योंकि वही पानी, वही नाव, वही रोज वहाँ जाना। इतनी घबड़ाहट हो गयी कि हम चौथे दिन भाग गये पैसे छोड़कर वहाँ से; क्योंकि वह तो घबड़ानेवाला हो गया।

वह जो सुखद मालूम हो रहा है, वह कितनी देर सुखद होगा, यह सोचा कभी? और जो दुखद मालूम हो रहा है, अगर उसमें जीये ही चले जाओ तो कितनी देर दुखद रहेगा।

दोनों अशान्तियाँ हैं, दोनों एक-दूसरे में मिली-जुली है; वे एक-दूसरे के छोर हैं। बहुत जल्दी यहाँ से वहाँ यात्रा हो जाती है, वहाँ से यहाँ यात्रा हो जाती है। इस सत्य को समझ लेने वाला व्यक्ति इसी यात्रा पर रुक जाता है। वह जैसा है, वहीं खड़ा हो जाता है। जो आता है, उसे ही

देखता है। और आता दुख ही है, सुख आता नहीं। सुख सिर्फ आता लगता है। और आते-आते ही विलीन होना शुरू हो जाता है। दुख ही आता रहता है। जो व्यक्ति उसको देखने खड़ा होता है, दुख पूरा, उसके सामने और अपने पूरे अन्धकार में, अपनी पूरी पीड़ा में, अपने पूरे रूप में प्रगट हो जाता है। और उसके साथ वे सब बीज प्रगट हो जाते हैं, जो उसने बोये थे, जो वह अब भी बो रहा है। इस वक्त भी हो सकता है, बगीचे में बैठा बो रहा हो। हाथ रुक जाता है, वह आदमी वापस खड़ा हो जाता है। वह चुपचाप दुख को देख लेता है, जी लेता है, भोग लेता है, लेकिन भागता नहीं।

भोगा हुआ दुख मिट जाता है। भोगा हुआ दुख आगे बढ़ जाता है। ऐसा जो भोग लेता है, वह भीतर चला आता है।

और जो दुख में भी नहीं भागता, वह शान्त हो जाता है, क्योंकि अब अशान्त होने का क्या कारण रहा। जो दुख में भी नहीं भागता है, वह अशान्त कैसे होगा! अशान्त हो सकता था, भागता तो। अब वह भागता ही नहीं है, अब जो भी है, वह ठीक है। वह शान्त हो जाता है। वह आनन्द को उपलब्ध हो जाता है, वह अपने घर लौट आता है।

ऐसी यात्रा से पहुँचता है व्यक्ति मुक्ति में। लेकिन यह यात्रा जरूरी है।

श्रीनगर, २ अक्टूबर, १९६९

२. अस्तित्व का द्वार

...ऐसा कभी नहीं हो सकता। ऐसा नहीं होता है कि एक व्यक्ति का भ्रम टूट जाये और आनन्द उपलब्ध न हो। ऐसा होता ही नहीं। ऐसा हो ही नहीं सकता। यह ऐसा ही है, जैसे कोई कहे कि सौ डिग्री तक पानी तो गर्म हो गया है, लेकिन भाप नहीं बनता। हम कहेंगे, ऐसा हो ही नहीं सकता, तुम्हारी डिग्री मापने में कहीं भूल हो गयी होगी। सौ डिग्री तक पानी गर्म हो ही गया है तो भाप बन ही जायेगा। इसमें कोई उपाय ही नहीं है दूसरा। यह भाप बनेगा ही, क्योंकि सौ डिग्री तक गर्म होना, यानी भाप बनना है। ये दो चीजें नहीं हैं। वह डिग्री तो द्वार है, जहाँ से भाप बनेगा। अगर उस डिग्री तक पहुँच गया तो भाप बनेगा। ऐसा हो सकता है कि सौ डिग्री पर ठहर जाये और कहे कि भाप नहीं बनते; सौ डिग्री पर रुक जाते हैं। सौ डिग्री तो गर्म हो, लेकिन भाप नहीं बने, ऐसा नहीं होता। लेकिन डिग्री नापने में गलती हो सकती है। और पानी कि डिग्री नापने में गलती बहुत कम होगी, क्योंकि पानी हमसे अलग-थलग है। अपनी स्थिति नापने में हमेशा भूल हो जाती है।

सुख का भ्रम हमारा मिटता नहीं;--बल्कि, सच तो यह है कि आनन्द की खोज में हम सुख के लिए ही जाते हैं। जो गहरा उपद्रव है, वह यह है कि आनन्द की खोज में भी हम किसलिए जाते हैं? क्या हम दुख के साक्षात से गये? अगर दुख के साक्षात से गये तो जाना ही नहीं पड़ेगा, हम पहुँच जायेंगे। अगर दुख के साक्षात्कार से गये हैं, तो हमें जाना नहीं पड़ेगा, हम पहुँच ही जायेंगे।

लेकिन हम दुख के साक्षात्कार से नहीं गये, हम दुख से बचने के लिए सुख खोजते रहे हैं। फिर किसी ने कहा कि सुख भ्रम है, और हमारी थोड़ी समझ में भी पड़ा, क्योंकि अतीत का अनुभव हमारा भी कहता है कि हाँ, सुख पाया नहीं। लेकिन क्या तुम्हारा भविष्य का मत भी कहता है कि

सुख नहीं पा सकोगे? जब मैं कहता हूँ कि सुख भ्रम है, सुख कभी नहीं पाया, तो तुम्हारा मन भी कहता है कि ठीक कहते हैं आप, सुख भ्रम है; बहुत बार सुख पाने की सम्भावना थी, पर सुख मिला नहीं। लेकिन अतीत में? लेकिन, क्या तुम्हारा मन यह भी बात मानने को तैयार होता है कि भविष्य में भी सुख नहीं मिल सकता है?

नहीं, इस पर राजी नहीं होता। बस, यहाँ जरा-सी चूक हो जाती है। तो फिर आप कहते हैं कि 'इस तरह से नहीं मिलेगा, तो छोड़िये, लेकिन आनन्द कैसे मिलेगा, यह बताइये; आनन्द कैसे मिलेगा, यह बता दें। हम वही पा लें, छोड़ें सबको। और आनन्द सुख से भी बड़ी चीज है। हम सुख को छोड़ देते हैं, आनन्द पा लेते हैं—आनन्द की क्या तरकीब है?'

फिर आदमी भजन कर रहा है, ध्यान कर रहा है, पूजा कर रहा है, प्रार्थना कर रहा है! फिर वह आनन्द की तरकीब खोज रहा है। इसलिए मैंने कहा कि कोई तरकीब नहीं है, कोई मैथड नहीं है, क्योंकि विधि हो सकती है सुख पाने की, और यहाँ कुल सवाल इतना है कि जो स्थितियाँ हैं, उसको जान लो और आनन्द में पहुँच जाओगी। आनन्द में पहुँचने के लिए तुम्हें कुछ भी न करना पड़ेगा; एक इंच चलना न पड़ेगा।

लेकिन हमारे चित्त की जो तरकीब है, वह यह है—वह कहता है: ठीक है, आप ठीक कहते हैं;—सुख तो नहीं मिला, लेकिन आगे मिल सकता है। '...ठीक है, कोई हर्ज नहीं। सुख न कहिये, आनन्द कहिये। हम आनन्द ही खोजने जाते हैं। वह कहाँ है आनन्द? हम कैसे उस आनन्द को पायें?'

अब यह आदमी फिर दुख से भाग रहा है। अभी तक यह सुख का नाम लेकर भागता था, अब आनन्द को लेकर भाग रहा है। अभी तक यह शराब घर में जाता था कि वहाँ सुख मिल जायेगा; अभी यह कहता है, वहाँ नहीं मिलता। अब यह मन्दिर में जाता है! यह कहता है कि वहाँ आनन्द मिल जायेगा। लेकिन जाता है कहीं! शराबी घर छोड़ता है, मन्दिर खोजता है—लेकिन जाता है कहीं! भाग रहा है। शराब-घर में जानेवाला उतना ही भाग रहा है, जितना मन्दिर में जानेवाला भाग रहा है। फर्क जरा भी नहीं है, भागने की दृष्टि से।

मैं नहीं कह रहा हूँ कि जाकर आदमी शराब पीने लगे। कह यह रहा

हूँ: दोनों भाग रहे हैं;—भागने की दृष्टि से कोई भी फर्क नहीं है। हाँ, एक का भागना ऐसा हो सकता है कि समाज-सम्मत न हो, ऐसा हो सकता है कि स्वास्थ्य को नुकसान पहुँचाता हो; एक का भागना ऐसा हो सकता है कि स्वास्थ्य को भी फायदा करता हो, समाज-सम्मत भी हो;—लेकिन भागना जारी है।

तो मैं जो कह रहा हूँ, उसे समझ लो ठीक-से। मैं यह नहीं कह रहा हूँ कि मैं तुम्हें कोई आनन्द की तरकीब बताता हूँ; मैं तुमसे यह नहीं कह रहा हूँ कि तुम आनन्द में जा सकती हो; यह भी मैं नहीं कह रहा हूँ तुमसे कि तुम आनन्द पा सकती हो भविष्य में। मैं तुमसे भविष्य की बात ही नहीं कर रहा हूँ। मैं तुमसे इतना कह रहा हूँ कि वर्तमान में तुम दुख के लिए जाग सकते हो; उसके आगे मुझे नहीं कहना है। मैं इतना ही कहता हूँ कि सौ डिग्री तक पानी गर्म करो, आगे पानी अपने-आप सम्हाल लेता है; उसकी तुम्हें चिन्ता नहीं करनी है, वह भाप बनेगा।

लेकिन हमें होता क्या है?

सारी शिक्षाएँ हमें खतरनाक हो गयी हैं। सब शिक्षक हमें रेडीमेड फार्मूला दे देते हैं! वे कहते हैं कि सुख है ही नहीं जीवन में। बस, बात खत्म हो गयी। वे समझाते हैं बात खत्म हो गयी। तुमने भी सुन ली। तो मैंने समझा, ठीक बात तो कह रहा है, बिल्कुल बात खत्म हो गयी। सुख है कहाँ जीवन में?

लेकिन सवाल यह नहीं है कि सुख जीवन में है या नहीं, सवाल यह है कि क्या तुम इस सत्य पर पहुँचे हो कि तुम्हारे लिए सुख की कोई संभावना नहीं, कभी भी नहीं, अनन्त काल में भी नहीं। क्या इस सत्य पर तुम पहुँचे हो? क्या यह तुम्हारी प्रतीति बन गयी है कि अनन्त काल तक भी तुम्हारे लिए सुख की कोई संभावना नहीं है? सुख है ही नहीं कभी, ऐसी तुम्हारी प्रतीति है? फिर क्या करोगे तुम?

तब तुम आनन्द के लिए पूछोगे। तुम कहोगे, कैसा आनन्द! सुख की कोई सम्भावना नहीं है, दुख ही है, और दुख में ही जीना है। वहीं खड़े होना है, यही सत्य है; इसमें खड़े होंगे।

ऐसे तुम अगर खड़े हो गये तो तुम आनन्द में पहुँच जाओगे। वह तुम्हारा पहुँचना नहीं है। यानी तुम कुछ करके वहाँ नहीं पहुँच जाओगे। यह खड़े

होना तुम्हें पहुँचा देगा। और तुम इसमें खड़े होने को राजी नहीं। तुम कहते हो कि ठीक है, वह दुख तो ठीक है, आप हमें आनन्द में पहुँचने का रास्ता बताइये। फिर आनन्द भविष्य में हो जायेगा;--कल। वह सुख का काम करने लगेगा। क्या फर्क पड़ता है? फिर स्वर्ग हो जायेगा; फिर मोक्ष हो जायेगा;—कल। फिर पोस्टपोनमेन्ट शुरू हो जायेगा।

सुख की भूल क्या थी? सुख की भूल थी पोस्टपोनमेन्ट। सुख का भ्रम क्या था?...स्थगन--आगे के लिए—कल। सुख का कसूर क्या था बेचारे का?...भविष्य की आशा। आनन्द भी बन सकता है भविष्य की आशा। आनन्द भी बन सकता है स्थगन कल के लिए। आनन्द भी बनेगा कल की सम्भावना। तो तुमने, सुख से जो काम ले रहे थे, तुमने आनन्द से भी वही काम ले लिया। फिर भागना शुरू हो गयी।

यह सवाल थोड़े ही था कि तुम किसके लिए भविष्य में जाते थे; सवाल यह था कि तुम वर्तमान से चले जाते थे। कहीं और चले जाते थे, इस दुख को भूला देते थे। सुख के नाम से भुलाते थे कि आनन्द के नाम से, इससे फर्क नहीं पड़ता।

मैं यह कह रहा हूँ कि तुम्हें सम्भावना ही नहीं है। तुम्हें सुख मिलेगा ही नहीं। तुम सुख पा ही नहीं सकते हो। आनन्द-वानन्द भी नहीं पा सकते। समझ गयीं मेरी बात?

मेरी बात यह है कि तुम पा ही नहीं सकती हो। इस जाल को तुम पूरा समझ लो कि इसमें पाना हो ही नहीं सकता। खड़े हो जाओ। खड़े हो ही जाओगे। जब पा नहीं सकते तो नहीं दौड़ोगे। पा सकते हो, दौड़ोगे; नहीं पा सकते, नहीं दौड़ोगे, खड़े हो जाओगे। खड़े हुए कि पा लोगे।

लेकिन उसे तुम भविष्य का आश्वासन मत बना लो, नहीं तो दौड़ जारी रहेगी। मेरी बात समझ पड़ती है?

और इसलिए मुझे निरन्तर दिक्कत होती है समझाने में--क्योंकि बात सामान्य है और जरा में खिसक जाते हैं हम। और फिर तब कोई मुझसे कह सकता है कि हम आपकी बातें ही क्यों सुनें? जब आप कहते हैं कि आनन्द मिलेगा ही नहीं, पा ही नहीं सकते हो, तो हम फिजूल आपके साथ परेशान हो रहे हैं! लेकिन मैं तुमसे कह रहा हूँ कि अगर तुम यह जान लोगे तो पा भी सकते हो। लेकिन उसे कभी आशा मत बनाना, उसे कभी भविष्य का

साथ मत बनाना, उसे कभी सत्य मत बनाना। वह बनेगी उपलब्धि, तुम तो जो है, उसे जानना। वह आयेगा अपने से, वह आना बिल्कुल सहज है।

प्रश्न—ऐसी कोई लालच बतायें कि जिससे हम भगवान की तरफ चल पड़ें। ऐसा कोई प्रलोभन, जिससे हमारा मन भगवत्प्राप्ति में लग जाये?

यह सवाल कीमती और बहुत महत्त्वपूर्ण है। महत्त्वपूर्ण इसलिए है कि जब तक किसी भी तरह का लालच हो, तब तक कोई भगवत्प्राप्ति में नहीं लग सकता है—चाहे वह लालच भगवत्प्राप्ति का ही क्यों न हो। लालच से भरा हुआ चित्त ही अशान्त होता है। जहाँ लालच है, वहाँ चित्त अशान्त है। और जब तक चित्त अशान्त है, तब तक भगवान से क्या सम्बन्ध हो सकता है?

लालच का मतलब क्या है?

लालच का मतलब यह है कि जो मैं हूँ, उससे तृप्ति नहीं है--कुछ और होना चाहिए। चाहे यह 'कुछ और' होना किसी ढंग का हो— स्वास्थ्य का हो, यश का हो, आनन्द का हो, उससे कोई फर्क नहीं पड़ता है।

लालच का मतलब है: एक टेन्शन, एक तनाव। जो मैं हूँ—वह नहीं; जो होना चाहिए, वह हो। और जो मैं हूँ, वह अभी हूँ--और जो होना चाहिए, वह कल होगा। तो कल के लिए मैं खिंचा हुआ हूँ, तना हुआ हूँ।

यह तना हुआ चित्त ही लालच से भरा हुआ चित्त है। इसलिए सब तरह की ग्रीड, सब तरह का लोभ अशान्ति पैदा करवाता है। और जहाँ अशान्ति है, वहाँ भगवत्प्राप्ति कैसे? अशान्ति चित्त का भगवान से संबंधित होने का कोई उपाय ही नहीं है। अशान्ति ही तो बाधा है। फिर हम पूछते हैं कि कोई लालच, क्योंकि हमारा मन लालच को ही समझता है। एक ही भाषा समझता है, वह है लालच की भाषा। धन के लिए इसीलिए दौड़ते हैं, यश के लिए इसीलिए दौड़ते हैं। फिर इस सबसे ऊब जाते हैं, तो हम कहते हैं कि भगवान के लिए कैसे दौड़ें?

इसे समझ लेना चाहिए कि उसके लिए दौड़ना तो सम्भव है जो हमसे दूर है, लेकिन जो हमारे भीतर ही है, उसके लिए दौड़ना असम्भव है। और अगर दौड़े तो चूक जायेंगे। तो कुछ चीजें ऐसी हैं जो दौड़ के पायी जा सकती हैं, क्योंकि असल में वे हमारा स्वभाव नहीं है, हमसे अलग हैं। अगर

धन पाना है तो बिना दौड़े नहीं मिल जायेगा। अगर यश पाना है तो दौड़ना पड़ेगा।

अब यह बड़े मजे की बात है कि धन के सम्बन्ध में लालच स्वाभाविक है, क्योंकि बिना लालच के धन पाया ही नहीं जा सकता। क्योंकि बिना दौड़े धन कैसे आ जायेगा? धन कहीं और है, आप कहीं और हैं। दौड़ना पड़ेगा। दौड़ना पड़ेगा तो शायद आप पहुँच जायें। लेकिन परमात्मा कहीं दूर नहीं है। एक इंच का भी फासला होता तो थोड़ा दौड़ लेते, एक इंच का भी फासला नहीं है। हम वहीं खड़े हैं, जहाँ परमात्मा है। हम वहीं हैं, जहाँ वह है, तो दौड़ेंगे कहाँ?...खोजने कहाँ जायेंगे? जिसे खोया हो, उसे खोज सकते हो; और जिसे खोया ही न हो, उसे खोजा तो भटक जायेंगे। तो परेशानी में पड़ जायेंगे।

मैंने सुना है, एक आदमी ने शराब पी ली थी। थोड़ी देर बाद बेहोश हो गया। आदत के वश अपने घर चला आया; पैर चले आये घर। लेकिन बेहोश था, घर पहचान नहीं सका। सीढ़ियों पर खड़े होकर पास-पड़ोस के लोगों से पूछने लगा: मैं अपना घर भूल गया हूँ; मेरा घर कहाँ है, मुझे बता दो। लोगों ने कहा, यही तुम्हारा घर है। उसने कहा, मुझे भरमाओ मत। मुझे मेरे घर जाना है, मेरी माँ मेरा रास्ता देखती होगी। और तुम कृपा करो, मुझे मेरे घर पहुँचा दो।

शोरगुल सुनकर उसकी बूढ़ी माँ दौड़ी हुई आयी। दरवाजा खोलकर उसने देखा कि बेटा चिल्ला रहा है, रो रहा है कि मुझे मेरे घर पहुँचा दो। उसने उसके सिर पर हाथ रखा और कहा; बेटा, यह राते घर है, मैं तेरी माँ हूँ। उसने कहा, हे बुढ़िया! तेरी ही जैसी मेरी माँ है, वह मेरा रास्ता देखती होगी। मुझे मेरे घर का रास्ता बता दे। पर ये सब लोग हँस रहे हैं, कोई मुझे मेरे घर का रास्ता नहीं बताता है। मैं कहाँ जाऊँ, मैं कैसे अपने घर को पहुँचूं?

एक आदमी ने, जो उसके साथ ही शराब पीकर लौटा था, कहा--ठहर, मैं बैलगाड़ी ले आता हूँ, मैं तुझे तेरे घर पहुँचा देता हूँ। उस भीड़ में से लोगों ने कहा: पागल, इसकी बैलगाड़ी में मत बैठ जाना, नहीं तो घर से और दूर निकल जायेगा; क्योंकि तुम घर पर ही खड़े हुए हो। तुझे कहीं भी नहीं जाना है, सिर्फ तुझे जागना है। तुझे कहीं जाना नहीं है, सिर्फ

जागना है। सिर्फ होश में आना है और तुझे पता चल जायेगा कि तू अपने घर पर खड़ा है। और तू किसी बैलगाड़ी पर मत बैठ जाना, क्योंकि जितना खोज पर जायेगा, उतना ही दूर निकल जायेगा।

हम सब वहीं खड़े हुए हैं, जहाँ से हमें कहीं जाना नहीं है। लेकिन हमारा चित्त एक ही तरह की भाषा समझता है—खोजने की, दौड़ने की, लालच की, पाने की, जाने की, उपलब्धि की। तो ही तो हमारा चित्त इस तरह की भाषा समझता है।

अब आप पूछते हैं कि गृहस्थ—तो अगर ठीक-से समझें, तो जो पाने की, खोजने की, पहुँचने की, दौड़ने की, लोभ की भाषा समझता है, ऐसे का नाम ही गृहस्थ है। और गृहस्थ का कोई मतलब नहीं होता है। जिसको इस तरह की लैंग्वेजभर समझ में आती है, वह गृहस्थ है।

और जो पाने की, दौड़ने की, खोजने की, पहुँचने की भाषा छोड़ देता है—पहुँचा ही हुआ हूँ, पाया ही हुआ हूँ, हुआ ही हुआ हूँ--ऐसी भाषा समझने लगता है, उसका नाम संन्यस्त है। और अगर संन्यासी भी पहुँचने, दौड़ने की बात कर रहा है, तो वह अभी संन्यासी नहीं है। कपड़े बदल लिए होंगे, यह हो सकता है, लेकिन अगर वह यह कह रहा है कि पाना है परमात्मा को, तो अभी वह गृहस्थ है। अभी वह संन्यासी हुआ ही नहीं। अभी उसने जाना ही नहीं कि संन्यासी होने का मतलब क्या है।

संन्यासी होने का मतलब यह है कि पाने को कुछ है ही नहीं। जो भी पाने को है, वह पाया ही हुआ है। लोभ करने का कोई उपाय नहीं है, क्योंकि जिसका हम लोभ किये हुए हैं, वह हमारे भीतर ही बैठा हुआ है। और यदि हमने लोभ किया तो हम भटक जायेंगे, भीतर से कहीं और चले जायेंगे। और वही लोभ और लालच में हमें भटका रहा है।

अक्सर तो यही होता है कि एक आदमी गृहस्थ है और संन्यासी हो जाता है--तो लोभ कारण है। वह कहता है, गृहस्थी में नहीं मिलता आनन्द, संन्यस्त होने से आनन्द मिल जायेगा। वह कहता है, गृहस्थी में नहीं मिलता है परमात्मा, और मैं परमात्या को पाये बिना कैसे रह सकता हूँ! तो मैं संन्यासी हो गया हूँ। लेकिन अभी उसकी जो भाषा है, वह गृहस्थ की है। अभी उसे पता भी नहीं चला कि वह स्वयं गृहस्थ है, गृहस्थी के बाहर नहीं हो रहा है। अब वह नये उपाय में लग जायेगा—पूजा करेगा, प्रार्थना करेगा,

जप करेगा, तप करेगा--ये सब प्रयत्न होंगे पाने के। लेकिन वह पाया ही हुआ है; उसे पाने का कोई भी प्रयत्न उचित नहीं है --अनुचित है। उसे जानना है, पाना नहीं है।

इस फर्क को समझ लेना है कि उसे सिर्फ जानना है, पाना नहीं है; वह पाया हुआ है। ऐसे ही, जैसे हमारी जेब में कुछ चीजें पड़ी हैं और हम भूल गये हैं, और उसे हम खोजते फिर रहें हैं, खोजते फिर रहे हैं। वह नहीं मिलती, क्योंकि वह जेब में पड़ी है।

सत्य की, प्रभु की, आनन्द की, सब खोज व्यर्थ है।

असल में मत खोजिये, एक क्षण को भी कुछ मत खोजिये। एक क्षण को भी अगर सारी खोज रुक जाये, सारा लोभ रुक जाये, तो चित का आवागमन रुक जायेगा।

पर तब आप कहते थे कि कभी चित्त यहाँ जाता है, कभी वहाँ जाता है!--वह जायेगा ही; वह जाता ही रहेगा, जब तक लालच है। तो जहाँ लालच है, चित्त वहीं चला जायेगा। एक जगहभर नहीं आयेगा, जहाँ हमारा होना है। वहाँ भर नहीं आयेगा, क्योंकि वहाँ कोई लालच नहीं दिखायी पड़ती। वहाँ पाने को क्या है? भीतर पाने को क्या है? भीतर पाने को कुछ भी दिखायी नहीं पड़ता, सिर्फ बाहर दिखायी पड़ता है पाने को।

बड़ा मकान है, वह बाहर है; धन के ढेर हैं, वे बाहर है। और परमात्मा है तो वह भी कहीं दूर आकाश में बाहर है। भीतर कुछ दिखायी नहीं पड़ता है कि वहाँ जायें किसलिए। वहाँ पाने को मिलेगा? इसलिए चित सब जगह चला जाता है, एक जगह छोड़ देता है।

मैंने सुनी है एक कहानी कि भगवान ने सारी दुनिया बनायी है और जब आदमी को बनाया, तब बहुत परेशान हो गया है। क्योंकि आदमी को जैसे ही बनाया, आदमी हजार शिकायतें, हजार सवाल, हजार समस्याएँ लेकर पहुँचने लगा। उसने देवताओं से कहा, यह तो मुझे सोने भी नहीं देगा, जीने भी नहीं देगा। तो ऐसी कुछ बताओ तरकीब कि मैं आदमी से बच सकूं।

तो किसी देवता ने कहा, हिमालय पर बैठ जाइये।

तो उसने कहा, कितने देर हम बचेंगे हिमालय पर? आज नहीं कल कोई हिलेरी, कोई तेनज़िंग पहुँच जायेगा।

तो किसी ने कहा, चाँद पर बैठ जाइये।

वह भी बहुत दूर नहीं है, जब आदमी वहाँ पहुँच जायेगा।

दूर के तारे सुझाये, लेकिन उसने कहा, नहीं, वे कुछ काम नहीं करेंगे; कुछ ऐसी जगह बताओ, जहाँ आदमी पहुँचे ही नहीं।

तब एक बूढ़े देवता ने कहा: फिर एक ही जगह है, आप आदमी के भीतर बैठ जाइए और वहाँ वह कभी नहीं जायेगा। चाँद पर पहुँच जायेगा, लेकिन वहाँ कभी नहीं जायेगा। और भगवान इसके लिये राजी हो गया। यह बात उसकी समझ में आयी।

यह तो कहानी है, लेकिन सचाई भी यही है। लोभ ले जाता है बाहर, लोभ ले जाता है दूर, लोभ ले जाता है भविष्य में--और जिसकी यहाँ बात कर रहे हैं, भगवत्प्राप्ति की, वह है अभी--यहीं, इसी वक्त; हियर एण्ड नाऊ; न कल, न परसों; भविष्य में नहीं, अभी--इसी क्षण। कहीं आपके पास ही, आपमें ही, अभी ही मौजूद है। वह जो कह रहा है कि कहाँ खोजूँ, वही है, जिसको खोजना है। जो कह रहा है, कहाँ जाऊँ, किस लालच से जाऊँ--जो यह कह रहा है, जो यह पूछ रहा है, उसका ही पता लगा लेना है। और उसका पता लगा लेने के लिये किसी लोभ की, किसी लालच की, किसी दौड़ की, किसी खोज की, किसी उपाय की, किसी एफर्ट की कोई भी जरूरत नहीं है। उसके लिये चाहिये एफर्टलेसनेस; उसके लिये चाहिये सब प्रश्नों का छोड़ देना; उसके लिये चाहिये सब दौड़ का बन्द हो जाना; उसके लिये चाहिये लालच का निरस्त हो जाना, शून्य हो जाना।

तब आप कहाँ जायेंगे?...तब आप क्या करेंगे? तब आप वहीं होंगे, जहाँ आप हैं। तब वहाँ करने की कोई जरूरत नहीं है, वहाँ आप हैं। किया कि चूक गये।

इसलिए न कोई उपाय है उसके सामने--न कोई विधि है, न कोई मैथड है उसके सामने; न कोई मार्ग है उसे पाने का; न कोई गुरु उस तक पहुँचा सकता है आपको; न कोई सहारा दे सकता है। जिस दिन आपको ये सारे भ्रम टूट जायेंगे, आप पायेंगे--उसे आपने पा लिया है।

और इसलिए यह तो पूछिये ही मत; मैं तो कोई लालच उसके लिए नहीं बता सकता। मैं तो यह भी नहीं कहूँगा कि वहाँ आनन्द मिलेगा, मुक्त हो जायेंगे, अमृत हो जायेगा, अमर हो जायेंगे। ये सब लालच हमारे मन को पकड़ते हैं, क्योंकि मरने का हमें डर है। मृत्यु से हम भयभीत हैं, इस-

लिए हम चाहते हैं कि कोई विश्वास दिला दे कि पा लेने से अमर हो जायेंगे और मरेंगे नहीं। दुख हमें खा रहा है तो हम चाहते हैं कि कोई आश्वासन दे दे कि आनन्द वहाँ मिल जायेगा। जिन्दगी हाथ से निकली चली जा रही है, कोई विश्वास दिला दे कि वहाँ परम-जीवन मिल जायेगा तो हम दौड़ने लगें। और मजा यह है कि दौड़ रहे हैं इसीलिए।...उसको पा हीं नहीं सकते।

तो यह जो कन्ट्राडिक्शन है, यह अगर ख्याल में आ जाये तो दौड़ने की भाषा छूट जायेगी। तब रुकने की भाषा-मात्र...। तब भागने का ख्याल नहीं, ठहरने का ख्याल। तब इसलिए नहीं कि वहाँ क्या मिल जायेगा, बल्कि इसलिए उसे जानना है कि हम वहाँ हैं ही--चाहे कुछ मिले, और चाहे कुछ न मिले; हम वहाँ हैं ही। और उस स्थल को तो जानना ही चाहिए, जहाँ हम हैं। नहीं तो हमारा जीवन, हो सकता है, जो हम कर रहे हैं, वह बिल्कुल विपरीत हो--जो हम हैं, उसके बिल्कुल विपरीत हो। उसी को जान लेने की बात ही पर्याप्त है।

दो ही तरह की सम्भावनाएँ हैं--एक तो वे चीजें हैं, जिन्हें हम कोशिश करके पा सकते हैं; और कुछ चोजें ऐसी हैं, जिन्हें कोशिश करके हम खो सकते है। जैसे आपको रात नींद न आती हो और आप कोशिश करें नींद लाने की, क्योंकि आप कहेंगे कि बिना कोशिश के नींद कैसे आयेगी, बिना प्रयास के कैसे नींद आयेगी! तो आप प्रयास करें, गिनती गिनें, भगवान का नाम लें, मन्त्र पढ़ें--उठें, बैठें, हाथ धोयें, सिर धोयें, हजार उपाय करें, करवट बदलें--आप कहें, बिना उपाय के नींद कैसे आयेगी?...तो मुझे कोई उपाय चाहिए। तो मैं आपको कहता हूँ, फिर नींद रातभर नहीं आयेगी; क्योंकि सब उपाय नींद में बाधा बनेंगे।

नींद है विश्राम। किसी भी तरह का श्रम, विरोध है उसका। नींद है अप्रयास, अप्रयत्न। आपने प्रयत्न किया तो उल्टा हो जायेगा। तो अगर नींद न आती हो तो कोई प्रयास न करें, बस चुपचाप पड़े रहें। प्रयास ही न करें नींद का, नींद की बात ही छोड़ दें। नींद लाने की कोशिश ही न करें तो नींद आ सकती है। आपने प्रयास किया कि आप गये—आप खो गये; फिर नींद नहीं आ सकेगी।

कुछ चीजें हैं, जो आती हैं और हमें लानी नहीं पड़तीं। और परमात्मा

उन चीजों में अन्तिम चीज है, जो आता है, उसे हम ला नहीं सकते।

लेकिन आप कहेंगे, क्या हम कुछ भी न करें? यह मैं नहीं कहता हूँ। सूरज निकला है, आपका द्वार बन्द है, तो वह भीतर नहीं आयेगा, द्वार पर ठहरा रहेगा। लेकिन आप गठरी बाँधकर सूरज को घर के भीतर नहीं ला सकते, आप ज्यादा-से-ज्यादा इतना कर सकते हैं कि द्वार खोलकर बैठ जायें और प्रतीक्षा करें। आपकी तरफ से बाधा न रहे, बस इतना ही प्रयास है।

अगर ठीक-से समझें तो पॉजीटिवली आप कुछ भी नहीं कर सकते सूरज को भीतर लाने के लिए। विधायक रूप से आप नहीं उसको गठरीयें बाँध-कर ला सकते हैं; निगेटिवली।

मैंने कहा, आत्मिक रूप से इतना कर सकते हैं कि आपकी तरफ से बाधा न रहे; सूरज आये तो आपकी तरफ से रुकावट न रहे। आप दर-वाजा खोल सकते हैं, खिड़की खोल सकते है, और बैठकर प्रतीक्षा कर सकते हैं। सूरज आयेगा, आप ला नहीं सकते; लेकिन आप रोक सकते हैं।

इस बात को ठीक-से समझ लेना चाहिए: आप ला नहीं सकते सूरज को भीतर, लेकिन आप आने से रोक जरूर सकते हैं। और अगर आने से रोक रहे हैं तो नहीं ही आयेगा सूरज; हालांकि ला नहीं सकते हैं। सिर्फ आपकी रुकावट न हो, बाधा न हो, हिन्ड्रेन्स न हो, दरवाजा बन्द न हो--वह आ जायेगा।

लेकिन तब भी आप यह नहीं कह सकते कि मैं ले आया। यह आप कहेंगे तो गलती हो जायेगी। इसलिए जो परमात्मा को उपलब्ध होता है, वह यह भी नहीं कह सकता है कि मैंने पा लिया; वह इतना ही कहता है, उसकी कृपा। वह यह भी नहीं कह सकता कि मैंने पा लिया, क्योंकि मैं क्या पा सकता हूँ!...उसका प्रसाद, उसकी ग्रेस, उसकी अनुकम्पा: वह मिला।

जिसको भी मिला है, वह यह नहीं कह सकता है कि मैंने पा लिया है। वह अहंकार भी वहाँ काम नहीं कर सकता है। क्योंकि अहंकार वहीं काम कर सकता है, जहाँ हमारा प्रयत्न सफल होता हो। लेकिन जहाँ हमारा कोई प्रयत्न सफल नहीं होता, वहाँ अहंकार के खड़े होने का कोई उपाय नहीं है। हम इतना कह सकते हैं कि मैंने बाधा नहीं दी। हम इतना ही कह सकते हैं कि मैं तैयार था कि वह आये। हम इतना ही कह सकते हैं कि मेरा द्वार खुला था; आया वही है, हम उसको लाये नहीं है। सिर्फ हमने रोका नहीं है।

इसे ठीक-से समझ लें।

जैसे मैं मुट्ठी बाँधें हुए हूँ, और मैं जोर से मुट्ठी बाँधे हुए हूँ, और मैं किसी को पूछूँ कि मैं मुट्ठी को कैसे खोलूँ, क्या उपाय करूँ, क्या प्रयत्न करूँ? वह आदमी मुझे बताये, उपाय, मुट्ठी खोलने का। वह यही बतायेगा कि तुम बाँधोभर मत। तुम बाँधने के लिए जो प्रयास कर रहे हो, वह कृपा करके मत करो, मुट्ठी खुल जायेगी।

मुट्ठी खोली नहीं जाती, मुट्ठी सिर्फ खुलती है; --बाँधी जा सकती है। खुला होना मुट्ठी का स्वभाव है। हमारे बिना कुछ किये मुट्ठी खुल जाती है। हमारे बिना कुछ किये मुट्ठी बँधती नहीं है।

स्वभाव का मतलब है, जो हमारे बिना किये हो जाये; विभाव का मतलब है, जो हमारे करने से होता है। परमात्मा हमारा स्वभाव है, इसलिए करने से नहीं होगा। लेकिन हम कोशिश करके उसे खो सकते हैं; हम उपाय करके उसे रोक सकते हैं।

मुठ्ठी मुझे बाँधनी पड़ती है, खोलनी नहीं पड़ती--हालाँकि भाषा में हम कहते हैं कि मुठ्ठी खोल रहे हैं।

खोलना बिलकुल झूठा शब्द है। खोलना क्रिया नहीं है, बाँधना क्रिया है। बाँधने में एक्ट है आपका; खोलते में कौन-सा एक्ट है? खोलने में अन-एक्ट है। कहना चाहिये खोलने में बाँधनाभर नहीं कर रहे हैं आप। आप नहीं बांध रहे हैं, और मुठ्ठी खुल गयी है।

इस बात को अगर ख्याल में ले लें तो परमात्मा को खोजना नहीं है, हमने कैसे खोया है, यह भर समझ लेना है। यानी हमने किन तरकीबों से, किन उपायों से दीवालें और दरवाजे खड़े कर दिये हैं...कि जो हमसे मिला ही हुआ है, उससे भी मिलना मुश्किल हो गया है।

तो पूछना यह नहीं है कि हम कैसे उसे पायें, पूछना यह है कि हमने कैसे खोया है। इस फर्क को आप समझें, फिर पूरी बात भिन्न हो जायेगी आगे जाकर। इतना फर्क ख्याल में आ गया तो सारी साधना का रूप बदल जाता है। पूछना यह है कि किस उपाय से मैं उससे दूर हो गया हूँ, जिससे दूर होने का उपाय न था। कैसी तरकीब से मैंने सूरज को बाहर ठहरा दिया? किस तरकीब से मैं अन्धेरे में जी रहा रहा हूँ? कौन-से दरवाजे हैं, जो बन्द कर दिये हैं? कौन-से ताले हैं, जिनपर मैंने चाबी भर दी?...यह पूछना

जरूरी है।

लेकिन हम आमतौर से पूछते हैं कि परमात्मा को कैसे पायें? यह प्रश्न ही गलत है। पूछना चाहिये, हमने परमात्मा को कैसे खोया? हाऊ वी हैव लास्ट हिम? कैसे खो दिये हैं हम? क्योंकि परमात्मा को खोने का मतलब है, अपने को खोना। हमने अपने को कैसे खो दिया है? हम अपने को कैसे भूल गये हैं? यह कैसे सम्भव हुआ है इम्पासिबल? यह असम्भव कैसे सम्भव हुआ है? हम अपने को ही नहीं जान पा रहे हैं कि कौन हैं!

इससे ज्यादा असम्भव कोई बात हो सकती है: मैं हूँ, मैं जानता भी हूँ कि हूँ और फिर भी नहीं जानता कि कौन हूँ! बड़ी अद्भुत घटना घट गयी है। अगर दुनिया में कोई मिरैकल, कोई चमत्कार घटित हुआ है तो वह चमत्कार यह नहीं है कि किसी ने ताबीज बना दिया है हवा से, और किसी ने राख गिरा दी है हवा से, किसी ने किसी अन्धे की आँखें ठीक कर दी हैं। इस जगत् में जो सबसे बड़ा चमत्कार हो गया है, वह यह कि हम हैं, जानते हैं कि हैं, और पता नहीं कि कौन हैं, और पता नहीं कहाँ हैं, और पता नहीं कहाँ के लिये जा रहे हैं! यह एकमात्र मिरैकल है।

और यह कैसे सम्भव हुआ है, यह समझ लेना चाहिये। और अगर यह हमारी समझ में आ जायेगी कि यह कैसे सम्भव हुआ है, तो कठिन नहीं है यह बात कि हम मुठ्ठी बाँधकर बन्द कर दें और मुठ्ठी खुल जाये।

कुछ तरकीबें हैं मन की, जिनसे यह सम्भव हुआ है। पहली तो मन की तरकीब यह है कि वह आपको कभी वर्तमान में नहीं जीने देता। जीने ही नहीं देता। आप कभी वर्तमान में होते ही नहीं। यहाँ और अभी, आप कभी नहीं होते। या तो पीछे, अतीत में होते हैं--जो जा चुका है, जो अब नहीं है; या भविष्य में होते हैं, जो अभी आया नहीं, और नहीं है। जो है, जो अभी है इसी वक्त, इसमें आप कभी होते नहीं।

तो मन की एक ट्रिक है कि वह आपको वर्तमान से चुकाता रहता है। और वर्तमान से अगर आप चूक गये, तो दरवाजा बन्द हो गया; क्योंकि वर्तमान दरवाजा है सत्य का, अस्तित्व का, एक्जिस्टेंस का। अगर इसे ठीक-से समझ लें कि अस्तित्व में न तो अतीत है कुछ और न भविष्य है कुछ; अस्तित्व तो सदा वर्तमान है।

इसलिए आप परमात्मा के लिये 'पास्ट टेन्स' का या 'फ्यूचर टेन्स' का

उपयोग नहीं कर सकते। आप यह नहीं कह सकते कि 'गॉड वाज', यह नहीं कह सकते, 'ईश्वर था'। आप यह भी नहीं कह सकते, 'गॉड विल बी'; 'ईश्वर होगा'। आप जब भी कहेंगे, 'तब गॉड इज़'। ईश्वर के लिये अतीत और भविष्य का उपयोग नहीं होता, वह है।

सच बात यह है कि 'है' कहना भी परमात्मा को गलत है, क्योंकि हम 'है' उस चीज को कहते हैं, जो 'नहीं है' भी हो सकती है। हम कहते हैं, तख्त है, टेबल है, क्योंकि कल टेबल नहीं हो सकती है, कल नहीं थी। जो कल नहीं थी, कल नहीं हो सकती है, उसको 'है' कहने का कोई मतलब है? परमात्मा को 'हैं' कहना भी मुश्किल है, क्योंकि वह 'है-पन' है। 'गॉड इज़' ऐसा कहना गलत है; 'इजनेस', वह जो 'है-पन' है, वही परमात्मा है। और वह सदा वर्तमान है। वह न कभी अतीत है, न कभी भविष्य है। और हम? ...हम कभी वर्तमान में नहीं हैं; द्वार बन्द हो गया है।

मैंने सुनी है एक कहानी कि एक आदमी—अन्धा आदमी...एक बहुत बड़े भवन में कैद कर दिया गया है। हजारों दरवाजे हैं उस भवन में, सब बन्द है, सिर्फ एक दरवाजा खुला है। और वह अन्धा आदमी एक-एक दरवाजे को टटोलता हुआ घूमता है: दरवाजा बन्द, दरवाजा बन्द, दरवाजा बन्द। घूमते, घूमते, घूमते उस दरवाजे के पास आता है, जो दरवाजा खुला है। लेकिन उसे खुजान आयी, वह सिर खुजाया है और दरवाजा चूक गया। वह फिर आगे के दरवाजे को टटोल रहा है, वह बन्द है। फिर वह घूमता है, घूमता है। फिर वह वहाँ आता है और फिर ऊब जाता है, और दो-चार दरवाजे नहीं टटोलता है। फिर वह दरवाजा चूक जाता है। लेकिन क्या करेगा? अन्धा आदमी फिर टटोलना शुरू करता है। ऐसी कहानी चलती है कि वह बार-बार उस दरवाजे को चूक जाता है, जो खुला है; जहाँ से वह निकल सकता है उसी वक्त।

कहानी के सच होने की कोई जरूरत नहीं है, लेकिन हम वर्तमान के दरवाजे को निरन्तर चूक जाते हैं। और वही खुला है सिर्फ। और बहुत संकरा दरवाजा है, क्योंकि हमारे हाथ में क्षण का हजारवाँ हिस्सा ही होता है एक बार में। दो हिस्से भी नहीं होते, बस वह क्षण का एक हिस्सा हमारे हाथ में है, वही अस्तित्व है। बारीक लकीर एक्जिस्टेन्स की वही है। और उसे हम चूक जाते हैं। क्योंकि मन या तो पीछे की सोचता रहता है,

या आगे की सोचता रहता है।

तो मैं आपसे यह कह रहा हूँ कि कैसे आप चूक गये; आपको यह नहीं कह रहा हूँ कि कैसे आप पा लेंगे। सिर्फ इतना कि इस भाँति आप चूक गये। उस अन्धे आदमी से मैं यही कहूँगा कि तूने खुजाया है, इसलिए चूक गया। अब किसी दरवाजे पर खुजाना मत; तू ऊब गया, घबड़ा गया और दो-चार दरवाजे तूने बिना टटोले छोड़ दिये। इसलिए अब तू मत घबड़ाना और मत ऊबना, नहीं तो फिर चूकने का डर सम्भव है।

वर्तमान में होना, दरवाजे पर खड़े हो जाना है। और ऐसा कभी नहीं हुआ कि जो आदमी वर्तमान में खड़ा हो गया है, उस आदमी को परमात्मा से क्षणभर के लिए भी वंचित रहना पड़ा हो; ऐसा कभी हुआ ही नहीं।

चित्त को वर्तमान में ले आना ही ध्यान है; वही मैडीटेशन है, वही समाधि है। और चित्त को वर्तमान से यहाँ-वहाँ भटकाये रहना—वही उपद्रव है।

और ध्यान यह रहे कि हम आखिर वर्तमान से चूक क्यों जाते हैं? ...लोभ के कारण, लालच के कारण; क्योंकि लोभ हमेशा भविष्य की बातें करता है। लोभ वर्तमान की बात करता ही नहीं। करेगा कैसे? जो भी पाना है, अभी तो पाया नहीं गया। जो भी पाना है, वह कल ही पाया जा सकता है, आगे ही पाया जा सकता है। इसी वक्त पाने का तो कोई उपाय नहीं है, इसलिए लोभ हमेशा भविष्य की भाषा बोलता है। लोभ चुका देता है। और अहंकार चुका देता है।

अहंकार सदा अतीत की भाषा बोलता है, पास्ट की। जो पाया, जो मिला, जो किया, जो बनाया, वह सब पास्ट में है। अहंकार सदा ही अतीत की भाषा बोलता है कि मैं फलाँ आदमी का बेटा हूँ। जो हो रहा है, उसका तो पता नहीं है; जो हो चुका है, उसी का मैं दावा कर सकता हूँ। मेरे पास इतने करोड़ रुपये हैं। होंगे, उनका तो दावा नहीं कर सकते आप; जो हो चुका है—मेरी तिजोड़ी इतनी बड़ी है और मैं इतनी बड़ी कुर्सी पर रहा हूँ। मैं कोई साधारण आदमी नहीं हूँ। मैं 'सम बडी' हूँ, 'मैं कुछ हूँ', वह हमेशा पास्ट से आता है। वह हमारे अतीत का समय है, जिसको हमने जोड़कर खड़ा कर दिया है। वह हमारा अहंकार है। अहंकार हमेशा ही पीछे ले जाता है, और लोभ हमें आगे ले जाता है।

और गौर से अगर देखें तो लोभ और अहंकार एक ही चीज के दो हिस्से हैं। जो लोभ पूरा हो चुका, वह अहंकार बन गया; जो पूरा होगा, वह अहंकार बनेगा। जो अहंकार बन गया है, वह लोभ है; जिससे आप गुजरे। वह लोभ जो अभी आकर पकड़ रहा है, वह भविष्य में बनने वाला अहंकार है; जिससे आप गुजरेंगे।

समस्त लोभ का संग्रह अहंकार है। वह अतीत में भटकाता है।

इसलिए बूढ़ा आदमी होगा तो वह अतीत में भटकता होगा, क्योंकि आगे तो मौत है और वहाँ लोभ की गुंजाइश कम है। तो वहाँ क्या लोभ करियेगा? तो बूढ़े आदमी का मन हमेशा अतीत में भटकता रहता है। वह बैठा है और सोच रहा है: जवानी जो थी, दिन जो गये, यादें जो हैं भीतर छिपी, वह उनको सोचता रहता है। बूढ़ा आदमी अतीत में सोचता रहेगा, क्योंकि भविष्य में दिखायी पड़ती है मौत। वहाँ वह देखना भी नहीं चाहता। लौट के पीछे देखता रहता है।

बच्चे, जवान सदा भविष्य में देखते रहेंगे। अभी उनका अहंकार बना नहीं, बनने की प्रतीक्षा कर रहा है। तो बच्चे और जवान सदा भविष्योन्मुख होंगे, फ्यूचर सेन्टर्ड होंगे। लोभ अभी बनेगा। बूढ़े आदमी हमेशा पास्ट सेन्टर्ड होंगे, बीत गया जो, वे उसी में खोये रहेंगे, उन्हीं स्मृतियों में। क्योंकि बूढ़े ने यात्रा कर ली अहंकार की, बच्चा अभी यात्रा करेगा।

तो बच्चे और जवान लोभ में जीते हैं, बूढ़ा आदमी अहंकार में जीता है। जितनी उम्र बीतती जाती है, अहंकार उतना मजबूत होता चला जाता है, सख्त होता चला जाता है। इसलिए वृद्ध आदमी क्रोधी हो जाता है, बेचैन हो जाता हैं; क्योंकि आगे तो कुछ भी नहीं है उसके--जो है, पीछे है। और अहंकार की गाँठ मजबूत हो गयी है। अहंकार की गाँठ चिड़चिड़ापन, क्रोध को पैदा करती है।

अभी इसे समझ लेंगे तो ख्याल में आ जायेगा कि अहंकार पीछे ले जाता है, बाहर को ले जाता है। और वे एक ही चीज के दो हिस्से हैं। मरे हुए लोभ का नाम अहंकार है, और अजन्मे अहंकार का नाम लोभ है; वह जो अभी जन्म लेगा।

तो इस वजह से हम चूक रहे हैं वर्तमान से--जहाँ कि सत्य है, जहाँ कि अस्तित्व है। लेकिन लोभ बड़ा कुशल है। जब सब तरह के लोभ से चुक

जाता है, तो वह कहता है: अब परमात्मा को भी पाना चाहिए। लोभ अहंकार ही है। लोभ बड़ा कुशल है। अहंकार की बड़ी अनन्त आकाँक्षाएँ हैं। जब सब पा लेता है वह--धन पा लेता है, यश पा लेता है, आदर पा लेता है, तब वह कहता है--ठीक है, यह तो पा लिया, परमात्मा को अभी पाना है; अमृत को भी पाना है, आनन्द को भी पाना है, ईश्वर को भी पाना है; अब मोक्ष कैसे मिले! फिर वह लोभ की भाषा में मोक्ष की बातें सोचने लगता है।

चूक गया है; उसे पता नहीं है कि यह भाषा तो इतने दिन चुकाती रही। यही भाषा आगे भी पकड़े रहेगा वह। हो सकता है, वह ढंग बदल ले अपना। मधुशाला न जाकर मन्दिर जाने लगे, सिनेमा न देखकर भजन-कीर्तन करने लगे; वह यह सब करने लगे। लेकिन उसके चित्त पर जो तनाव था लोभ का और अहंकार का, वह जारी है और उसी से वह चुक रहा है।

तो मैं कैसे कहूँगा आपको कि आप लोभ न करें, मैं तो आपसे कहूँगा, आप लोभ को समझ लें लोभ चुकानेवाला है। और अहंकार को समझ लें कि अहंकार चुकानेवाला है। और आप यह समझ लें कि अतीत और भविष्य चुकानेवाले हैं। वर्तमान मिलानेवाला है, वही अस्तित्व है।

तो एक क्षण को भी अगर आप उस जगह पहुँच जायें, जहाँ आप कह सकें: अब कोई अतीत नहीं है मेरे पास, और कोई भविष्य नहीं है मेरे पास --बस, मैं हूँ--तो आप उसी क्षण परमात्मा में प्रविष्ट हो जायेंगे--उसी क्षण; एक क्षण में ही ये घटनाएँ घट जायेंगी।

यह ऐसा सवाल नहीं है कि इसके लिए जन्म-जन्म लगें। हाँ, चूकने में जन्म-जन्म लग सकते हैं। दरवाजा बन्द है तो वर्षों तक यह हो सकता है कि दरवाजा बन्द है और रोशनी भीतर न आये, लेकिन यह नहीं हो सकता है कि दरवाजा खुले और रोशनी एक क्षण भी बाहर रह जाये। रोशनी तो कभी ठहरना नहीं चाहती; वह तो निरन्तर आने को पुकार ही रही थी; द्वार को ठोंके ही चली जा रही थी; आप थे कि द्वार बन्द किये थे!

तो यह हो सकता है कि एक आदमी जीवनभर दरवाजा बन्द रखे और अन्धेरे में जिये, लेकिन यह नहीं हो सकता है कि एक क्षण दरवाजा खोले और अन्धेरे में रहे। यह असम्भव है।

और ऐसा भी नहीं हो सकता है कि कोई आदमी कहे कि चूँकि मेरा

दरवाजा इतने दिन तक बन्द था, इसलिए एक क्षण में कैसे रोशनी भीतर आयेगी ! ऐसा भी नहीं होगा ।

अब हम कहते हैं कि इतने जन्मों का कर्म है ! इतने जन्मों का पाप है !...निपट नासमझी की बात कहते हैं। हजारों जन्मों का पाप भी एक क्षण के वर्तमान में खड़े हुए व्यक्ति को परमात्मा से नहीं रोक सकता है। पाप ही क्या था, पाप सिर्फ इतना था कि आप वर्तमान में खड़े नहीं होते; और पाप क्या था ? भविष्य में या अतीत में भागते रहे हैं।

एक कमरे में हजारों साल से अन्धेरा घिरा हो, तो ऐसा नहीं हो सकता कि अगर आप दिया जलायें, तो इतने जल्दी कैसे निकल सकता है! 'हजारों साल तक दिये जलाओ, तब मैं निकलूँगा'--अन्धेरा ऐसा नहीं कह सकता। अन्धेरा एक रात का हो कि हजार साल का हो, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। दिया जलता है और अन्धेरा मिटता है। असल में अन्धेरे की कोई पर्त नहीं हैं कि एक दिन का अन्धेरा और दो दिन का अन्धेरा, कोई दुहरी पर्तें हो जाये। अन्धेरे की कोई पर्त नहीं होती कि वह घना हो जाये। अन्धेरा घना नहीं होता है; अन्धेरा, बस, अन्धेरा है। एक दिये की लौ सब तोड़ देती है।

पाप की भी कोई पर्त नहीं होती है; क्योंकि पाप भी अन्धेरा है, अज्ञान है, अविद्या है। उसकी भी कोई पर्त नहीं होती है। लेकिन, सवाल कुल सिर्फ इतना है कि हम वहाँ खड़े हो जायें, जहाँ द्वार बन्द है। हाँ, पाप की आदत होती है, पर्त नहीं होती। अन्धेरे की भी आदत होती है। यह हो सकता है कि एक आदमी वर्षों से अन्धेरे में रहा हो...द्वार खोल दे, रोशनी आ जाये, लेकिन उसकी आँख बन्द हो जाये। यह हो सकता है। यह हो सकता है कि सालों से अन्धेरे में रहा आदमी द्वार खोल दे, रोशनी भीतर आ जायेगी फौरन। उसके द्वार खोलने और रोशनी के आने में क्षण का भी फासला नहीं रहेगा। इधर द्वार खुला, इधर रोशनी आयी। इधर द्वार खुलता गया, रोशनी आती गयी। द्वार का खुलना और रोशनी का आना एक ही क्रिया के दो हिस्से होंगे। लेकिन यह हो सकता है कि सैकड़ों वर्षों से अन्धेरे में गये आदमी की आँख रोशनी देखने में असमर्थ हो जाये। आँख बन्द कर ले और फिर अन्धेरे में हो जाये, यह हो सकता है।

अन्धेरे की आदत होती है; आपकी भी आदत होती है। लेकिन आदत तोड़ी जा सकती है। आदत समझपूर्वक की तो अपने-आप टूट जाती है।

आदत तोड़ना बहुत कठिन नहीं है। अगर अन्धेरे की पर्तें होती तो तोड़ना बहुत कठिन था। रोशनी आ गयी, आँख बन्द हो गयी, अब वह आदमी धीरे-धीरे, आँख एक बार में, दो बार में—धीरे-धीरे रोशनी का अभ्यस्त हो सकता है--आँखें थोड़ी देर में खोल लेगा, रोशनी देख लेगा। बन्द भी कर सकता है, बीच-बीच में खोल भी सकता है। धीरे-धीरे रोशनी का भय मिट जायेगा, वह रोशनी में जीने लगेगा।

परमात्मा का अनुभव एक क्षण में हो जाता है, लेकिन परमात्मा को सहने में थोड़ा वक्त लग जाता है। सहने में ! क्योंकि इतनी बड़ी शक्ति और इतना बड़ा प्रकाश हम पर उतरता है, तो थोड़ा वक्त लग जाता है। द्वार पर घबड़ाकर हम तब वापस भी लौट सकते हैं, डर भी सकते हैं, क्योंकि आनन्द भी अगर एकदम से उतर आये तो प्राणों को कँपा जाता है।

परमात्मा की उपलब्धि तो एक क्षण में हो जाती है; उपलब्धि के लिये राजी होने में थोड़ा वक्त लग सकता है--यह दूसरी बात है।

उपलब्धि का द्वार है वर्तमान में खड़े होना—और इसलिए इस दिशा में थोड़ा-सा काम शुरू करें। इस दिशा में थोड़ा-सा काम शुरू करें...चौबीस घन्टे में आधे घन्टे, पन्द्रह मिनट के लिए द्वार बन्द करके अन्धेरे में चुपचाप बैठ जायें, कुछ भी न करें। कुछ भी न करें, चुपचाप बैठ जायें।

बोलने में ऐसा लगता है कि बैठना भी करना ही हुआ। बोलने में ऐसा लगता है कि मुट्ठी खोलना भी करना ही हुआ। बोलने में फिर ऐसा लगता है। असल में बैठ जाने का मतलब है कि जो आप करते थे, वह मैं न करूँ; जो-जो कर रहे थे चौबीस घन्टे, वह मैं न करूँ। चुपचाप अन्धेरे में बैठ जायें आधा घन्टे को। ऐसा छोड़ दें अपने को—हम कुछ कर ही नहीं रहे हैं। जैसे एक सूखा पत्ता वृक्ष से गिरे, और हवाएँ उसको पूरब ले जायें तो पूरब चला जाये, पश्चिम ले जाये तो पश्चिम चला जाये, न ले जायें तो गिर जाये जमीन पर, लेकिन अपनी तरफ से कहीं न जाये।

इस बात को थोड़ा समझ लें। एक गिरता हुआ पता है वृक्ष का; सुखा पत्ता गिर रहा है नीचे। उसकी अब अपनी कोई अच्छा नहीं, अब उसे कहीं पहुँचना नहीं, अब उसे कुछ होना नहीं। अब तो हवाओं की इच्छा पर उसने छोड़ दिया है अपने को, समर्पित है। हवाएँ पूरब ले जाती हैं, पूरब चला; पश्चिम ले जाती हैं, पश्चिम चला; और नहीं ले जाती हैं तो गिर गया।

उठा ले जाती हैं आकाश में तो उठ गया; नहीं उठाती हैं, तो जमीन पर विश्राम करता है।

बस, सूखे पत्ते हो जायें; अपनी तरफ से कुछ न करें। इसका मतलब यह नहीं कि फिर होना बन्द हो जायेगा; विचार चलेंगे। फिर उनपर हवाओं का धक्का समझें, इससे ज्यादा नहीं। हवाएँ विचार इधर ले जायें, जान दें; हवाएँ विचार उधर ले जायें, जाने दें; आप कोई भी काम न करें। ले जाने का भी काम मत करें, रोकने का भी काम मत करें; आप, बस, साक्षी हो जायें; देखते रहें कि सूखे पत्ते की तरह हैं, हवाएँ जो कर रही हैं, कर रही हैं। परमात्मा कह रहा है अच्छे विचार करो, तो अच्छे विचार हो रहे हैं; न हमें अच्छे से मतलब है, न हमें बुरे से मतलब है; हम निर्णायक ही नहीं है; हम कोई डिसीजन नहीं लेते; हम कुछ भी नहीं करते, हम न-कुछ होकर बैठ गये हैं।

बड़ा मुश्किल है, क्योंकि धार्मिक आदमी को निरन्तर यह सिखाया जाता है कि बुरा विचार छोड़ो, अच्छा विचार करो; बुरे विचार को मत आने दो, अच्छे को लाओ। फिर आपने करना शुरू कर दिया, फिर आप उलझ गये चक्कर में, फिर वर्तमान में न रह सकेंगे; क्योंकि वर्तमान में बुरा विचार आया है तो भविष्य में अच्छा विचार है, जिसको लाना है। वर्तमान को हटाना है और भविष्य को लाना है। आप उपद्रव में पड़ गये, फिर वर्तमान में होना असम्भव है।

ध्यान के प्रयोग में आदमी बुरे-भले का भी विचार नहीं करता। वह विचार ही नहीं करता है; जो आता है, वह चुपचाप देखता रहता है। जैसे सड़क पर खड़ा हुआ एक आदमी देख रहा है—लोग गुजर रहे हैं, अच्छे भी, बुरे भी। रास्ता चल रहा है, वह चुपचाप खड़ा देख रहा है। आधे घन्टे के लिये चुपचाप खड़े हो जायें और देखते रहें। जो भी हो रहा है, होने दें, जरा भी न रोकें। क्योंकि रोकना आपका कृत्य बन जाता है। और आप काम में लग गये। और काम करो ही मत। राम-राम भी न करें, क्योंकि वह भी आपका कृत्य बन जाता है। आप फिर काम में लग गये। आप कुछ करें ही मत अपनी तरफ से। आप अपनी तरफ से बिलकुल शून्य हो जायें। और जो हो रहा हैं आँख के पर्दे पर, होने दें। जो भी गुजर रहा है, गुजरने दें। आ रहा है, आने दें; जा रहा है, जाने दें। न आप रोकें, न आप छेड़ें, न आप बीच

में उतरें। आप किसी तरह का इनवाल्वमेनट न लें, दूर खड़े देखते रहें।

कठिन होगा; क्योंकि हमारी आदत निरन्तर हर चीज में उलझ जाने की है। चुपचाप बैठ जाना कठिन होगा। चुपचाप का मतलब यह नहीं है कि विचार नहीं होंगे, विचार तो होंगे। लेकिन आप चुपचाप हों, विचारों को चलने दें। जैसे फिल्म चल रही है एक पर्दे पर। मस्तिष्क का भी एक पर्दा है; एक प्रोजेक्टर भी है उसका, वह फिल्म चलाता रहता है। एक फिल्म चल रही है पर्दे पर। बस, इतना समझें कि विचार चल रहे हैं। स्मृतियाँ आ रही हैं, भविष्य के ख्याल आ रहे हैं—आने दें। चुपचाप बैठे रहो, देखते रहो।

आज कठिन होगा, कल कठिन होगा, परसों कठिन नहीं होगा। बस, हिम्मत इतनी रखनी है कि कूद मत जाना। अगर ये बुरे विचार आ गये, इसे अलग कर दो। बुरे होने से कुछ लेना-देना नहीं है। साक्षी को न कुछ बुरा है, न कुछ भला है। काँटे भी उतना ही अर्थ रखते हैं, फूल जितना अर्थ रखते हैं। न काँटा बुरा है, न फूल अच्छा है। वह हमारी अपनी समझ के हिसाब से अच्छा-बुरा कर लेते हैं। सब चीजें हैं, और आप चुपचाप बैठे रहें।

कुछ ही दिनों में, अगर चुपचाप बैठ रहें, तो एक अद्भुत अनुभव शुरू होगा। और वह अनुभव यह होगा कि कभी-कभी ऐसा होगा कि गैप आ जायेगा, इन्टरवल आ जायेगा, अन्तराल आ जायेगा। कभी-कभी ऐसा होगा कि विचार थोड़ी देर के लिए नहीं होंगे, एकदम मुक्त हो जायेंगे। एक विचार आया और फिर दूसरा नहीं आया, और बीच में खाली जगह छूट जायेगी। उसी खाली जगह से आपको पहली झलकें मिलनी शुरू होंगी। और उस खाली जगह में आप भी नहीं होंगे, इतनी खाली जगह होगी कि बस खालीपन होगा; जस्ट एम्पटीनेस।

वहि द्वार है। वहीं से पहली झलकें आपको मिलनी शुरू होंगी।

तो निरन्तर उस प्रक्रिया में लग रहें तो धीरे-धीरे विचार कम होने लगेंगे, खाली जगह ज्यादा होने लगेगी। ऐसा, जैसे रास्ते पर एक आदमी निकला, फिर घन्टेभर कोई दूसरा आदमी नहीं निकला और रास्ता खाली रह गया। एक विचार आया पर्दे पर, फिर दूसरा नहीं आया और बहुत देर के लिए पर्दा खाली सफेद रह गया। उस सफेदी में से, उस खालीपन में से, उस एम्पटीलेस में से आपके पहले सम्पर्क परमात्मा से शुरू होंगे, क्योंकि उस

क्षण में आप वर्तमान में होंगे। उस क्षण में न आप अतीत में हो सकते हैं, न आप भविष्य में हो सकते हैं। क्योंकि विचार अतीत में ले जा सकता है, विचार भविष्य में ले जा सकता है। जहाँ विचार नहीं हैं, वहाँ आप कहीं भी नहीं जा सकते; आप वहीं होंगे, जहाँ हैं। विचार-रहित हुए कि आप वर्तमान में हुए।

वर्तमान में होने का अर्थ है : विचार-रहित हो जाना।

लेकिन विचार-रहित होने की कोशिश मत करना, नहीं तो कभी विचार-रहित नहीं हो सकते। बस, चुपचाप देखना है विचार को। वह अपने से जाता है। जितना-जितना हमारा देखना बढ़ता है, उतना विचार कम होता है—प्रप्रोर्शनेटली। जितना हम जगते हैं, भीतर उतना विचार खत्म होता है। जिस दिन हम शून्य रह जाते हैं, उस दिन विचार नहीं रह जाता है। और जहाँ विचार नहीं रहा, जहाँ हम पूरे जगे हुए रहे, टोटली अवेयर, विचार गये। हम जगे हैं, अब हम कहाँ होगे ? अब हम वहाँ होंगे, जहाँ हम हैं। इंच-इंच इधर-उधर नहीं हो सकते। अब हम खड़े हो गये उस द्वार पर, जहाँ से मिलन हो सकता है।

और, इसलिए, उसे लोभ की भाषा में मत समझना।

आनन्द आयेगा, लेकिन आनन्द पाने की भाषा में मत समझना।

आनन्द आयेगा, लेकिन आनन्द को लक्ष्य मत बनाना।

अमृत मिलेगा, लेकिन अमृत की चेष्टा मत करना।

भगवत्प्राप्ति होगी, लेकिन भगवत्प्राप्ति की नहीं जा सकती।

इस छोटे-से बारीक भेद को समझ लेना। भगवत्प्राप्ति होगी, लेकिन भगवत्प्राप्ति की नहीं जा सकती। करनेवाला अहंकार वहाँ नहीं चल सकता है। और इसलिए मैंने कहा कि लोभ, प्रलोभन, लालच, इस विषय में उनकी इंचभर भी गति नहीं है।

प्रश्न : यत्न तो करना पड़ता है न ?

उत्तर : नहीं, जरा भी नहीं, क्योंकि जरा भी यत्न किया तो सरेन्डर नहीं हो सकता। उसका मतलब है कि हम कुछ करेंगे? और सरेन्डर का मतलब है कि हम क्या कर सकते हैं !

प्रश्न : फिर तो वही बात हुई : आपको सुपुर्द करता हूँ।

उत्तर : आपको ! किसको ? आपका तो आपको पता ही नहीं है। और सुपुर्द करता हूँ, तब फिर एक्ट शुरू हो गया। इसे थोड़ा समझने की बात है न ! इतने बारीक फासले हैं ! जब हम कहते हैं कि सुपुर्द करता हूँ, तो हो सकता है, कल हम कहें कि वापस लेता हूँ; वह क्या कर लेगा? सुपुर्द करता हूँ, इसमें भी हमारा एक्ट जारी है। हम कुछ कर रहे हैं। करने के मालिक हमीं हैं। तो मेरा कहना यह है, दिस कैन नॉट बी सरेन्डर, वी कैन ओनली बी सरेन्डर्ड; क्योंकि वह जो बारीक फासला है, वह यदि न दिखायी पड़े तो निरन्तर भूल होती चली जाती है। हम समर्पण कर नहीं सकते, क्योंकि हम करेंगे तो समर्पण हमारा कृत्य हुआ। और जो हमारा कृत्य होता है, उसे हम वापस ले सकते हैं। कल हम कह सकते हैं, बस ठीक है, हम वापस लेते हैं। कठिनाई यह है न ! कठिनाई जो है, कृष्ण क्या कह रहे हैं, वही हम समझ नहीं रहे हैं, यह बहुत मुश्किल है। हम करने की भाषा में ही समझेंगे। असल में समर्पण का अर्थ ही है कि तू कुछ भी न कर, और जब आप कुछ भी नहीं करते तो समर्पण हो ही जाता है, क्योंकि फिर हो रहा है सब।

समर्पण किया नही जा सकता––आप कुछ भी न करें, समर्पण हो जाता है। कुछ भी न करने का अन्तिम क्षण समर्पण है।

और समर्पण भी किया तो चूक गये। अगर हम ठीक-से समझें, तो समर्पण मैं कर रहा हूँ––मैं करूँगा––तो गड़बड़ हो गयी सब। फिर समर्पण कैसे होगा ? नहीं, समझना यह है कि मैं समर्पित हूँ! मैं समर्पित ही रहा हूँ। उपाय क्या है ? साँस आपने ली आज तक ?

लेकिन हम रोज-रोज यही कहते हैं कि मैं श्वास ले रहा हूँ। श्वास सिर्फ आती-जाती है, आपने कभी भी ली नहीं है, आज तक जिन्दगी में। किसी आदमी ने श्वास ली ही नहीं कभी, सिर्फ आती-जाती है। क्योंकि अगर हम लेते होते, मौत दरवाजे पर आ जाती, हम कहते, थोड़ा ठहरो अभी, हम श्वास जारी रखते हैं। लेकिन हमें पता है कि मौत द्वार पर आयी तो जो श्वास बाहर गयी, फिर हम उसे भीतर न ला सकेंगे। लेकिन जिन्दगीभर हम कहते यही हैं कि मैं श्वास ले रहा हूँ। बड़ी भूल की बात कहते हैं। सवाल यह है समझने का कि श्वास मैंने कभी ली है ? सिर्फ आयी-गयी है। मैं कहाँ हूँ ? मैं जन्मा हूँ ? मैं मरूँगा ? जन्म भी हुआ है, मृत्यु भी होगी।

श्वास भी चली है, विचार भी आये हैं, जीवन भी घटा है, जस्ट हैपन्ड। हमने कुछ किया है क्या ?

यह बोध हमारे ख्याल में आ जाये कि मेरे किये बिना सब हुआ है, यह समझ में आ जाये...। तो मैं क्या करूँ? मैं कुछ भी नहीं कहता हूँ। सब हो रहा है। हो रहा है--ऐसी स्थिति में समर्पण हो जाता है। वह आपको करना नहीं पड़ता, वह घट जाता है। और जब वह घटता है, तब आप वापस नहीं लौटा सकते हैं, क्योंकि आपने किया होता तो आप वापस लौटा सकते हैं। आपने किया ही नहीं, घट गया। आप उसे वापस नहीं लौटा सकते हैं।

अमरीका में एक नया, चित्रकारों का एक मूवमेन्ट हैं, उसको वे कहते हैं हेपनिंग। चित्रों की प्रदर्शनी उसे कहते हैं। अगर सौ चित्र प्रदर्शनी में लगाये गये हैं, तो दर्शक देखने आयेंगे। तो हर चित्र के बगल में एक खाली कैन्वस लगा होता है; और खाली कैन्वस के नीचे रंग और ब्रुश भी रखे होते हैं। फिर दर्शक देख रहे हैं, देख रहे हैं, और किसी दर्शक को एकदम लगा और उसने ब्रुश उठाया और खाली कैन्वस पर कुछ पेन्ट किया। शर्त यही है कि अपनी तरफ से पेन्ट मत करना। अगर अपनी तरफ से किया तो वह बेकार हो जायेगा; होने देना। उस सिचुएशन में अगर ऐसा पकड़ जाये, होने लगे पेन्ट, तो होने देगा, रोकना भी मत।

तो उसको वे हेपनिंग पेंटिंग कहते हैं। वह किसी ने बनायी नहीं है। उस पर किसी का नाम नहीं होता है; वह घटी है, वह घट गयी है।

ईसाइयों में एक साधकों का सम्प्रदाय है, क्वेकर। क्वेकरों की जो बैठक होती है, उस बैठक में कोई बोलने के लिए निमन्त्रित नहीं होता है। कोई बोलनेवाला नहीं होता, बैठकभर होती है, इकट्ठे होते हैं; बैठ जाते हैं। नियम यह है कि अगर किसी को कभी बोलना हो जाये तो वह खड़ा हो जाये और बोलने लगे। बैठे हुए लोग सुनेंगे, फिर बिना धन्यवाद दिये विदा हो जायेंगे।

कई बार ऐसा होता है कि महीनों बीत जाते हैं, कोई नहीं बोलता, क्योंकि लोगों का ख्याल यह है कि अपनी तरफ से बोलना मत। अगर ऐसा जरा भी लगे कि मैं बोल रहा हूँ, तो फिर बोलना ही मत, क्योंकि वह पाप हो गया। अगर ऐसा लगे कि परमात्मा बोल रहा है, मैं हूँ नहीं--ऐसा कुछ लगे तो खड़े हो जाना, बोल देना। हम सुन लेंगे और विदा हो जायेंगे।

तो कई दफे महिनों बीत जाते हैं उनकी बैठक में, बोलना नहीं होता।

लोग आकर बैठते हैं, चुपचाप बैठे रहते हैं, बैठे रहते है, फिर विदा हो जाते हैं। कभी-कभी ऐसा होता है कि कोई खड़ा हो जाता है और बोलता है। वह जो रेकॉर्ड हैं उनके बोलने के, बड़े अर्थपूर्ण हैं। क्योंकि तब वह आदमी की भाषा ही नहीं होती हैं, वह हेपनिंग होती है। उसकी प्रतिक्षा करनी पड़ती है।

तो, देखें और शून्य हो जायें; और जो होता है, होने दें। बाहर सड़क पर कुत्ते की आवाज होगी, हॉर्न बजेगा, बच्चे चिल्लायेंगे, सड़क चलेगी, आवाजें आयेंगी--आने दें; विचार चलेंगे--चलने दें; मन में भाव उठेंगे--उठने दें। जो भी हो रहा है; होने दें, आप कर्ता न रह जायें, आप बस साक्षी रह जायें--यह हो रहा है, यह हो रहा है, यह हो रहा है, देखते रहें, देखते रहें, देखते रहें। इसी देखने में वह क्षण आ जाता है, जब अचानक आप पाते हैं कि कुछ भी नहीं हो रहा है, सब ठहरा हुआ है।

और तब वह आपका लाया हुआ क्षण नहीं है। और तब आप एकदम समर्पित हो गये हैं, और आप उस मन्दिर पर पहुँच गये हैं, जिसको खोजकर आप कभी भी नहीं पहुँच सकते हैं। अब वह मन्दिर आ गया है सामने और द्वार खुल गया है। और जिस परमात्मा के लिए लाखों बार सोचा था कि मिलना है, मिलना है, मिलना है--नहीं मिला; अब बिना सोचे वह सामने खड़ा है--वह मिल गया है। और जिस आनन्द के लिए लाखों उपाय किये, कभी उसकी एक बून्द न गिरी, आज उसकी वर्षा हो रही है और बन्द नहीं हो रही है। और जिस संगीत के लिए प्राण प्यासे थे, वह चारों तरफ बज रहा है और बन्द नहीं होता।

यह एक घटना घटती है। यह आपके घटाये नहीं घट सकती है। इसलिए आप अपने को हटा लेना और घटना को घटने देना। अपने को हटा लेना, अपने को बीच में खड़ा मत होने देना। आप हटना और घटना को घटने देना।

इसको ही मैं भक्त का भाव कहता हूँ; या साधक की चेष्टा कहता हूँ। कहने को चेष्टा कहता हूँ, लेकिन यह कोई चेष्टा नहीं हुई। लेकिन भाषा में कोई और उपाय नही है।

श्रीनगर, ३ अक्तूबर, १९६९

३. मौन का द्वार

परमात्मा के सम्बन्ध में जितने असत्य कहे गये और गढ़े गये हैं, उतना और किसी चीज के सम्बन्ध में नहीं। परमात्मा के सम्बन्ध में जितना झूठ प्रचलित है, उतना किसी और चीज के सम्बन्ध में नहीं। परमात्मा के सम्बन्ध में जितना असत्य, जितने झूठ, जितनी कल्पनाएँ प्रचलित हैं, उतना किसी और चीज के सम्बन्ध में नहीं। और कुछ बात ऐसी है कि शायद परमात्मा के सम्बन्ध में सत्य कहा भी नहीं जा सकता है। जो भी कहा जाता है, वह कहने के कारण ही असत्य हो जाता है। कुछ है, जिसे कहना सम्भव नहीं है। कुछ है, जिसे जाना जा सकता है; लेकिन कहा नहीं जा सकता। और आश्चर्य की बात है कि जिस परमात्मा के सम्बन्ध में कुछ नहीं कहा जा सकता, उसके सम्बन्ध में इतने शास्त्र लिखे गये हैं जिनका हिसाब लगाना मुश्किल है।

शब्द असमर्थ है। हम जो कह सकते हैं, वह संसार के आगे नहीं जाता। शब्द में, भाषा में संसार से आगे की बात नहीं कही जा सकती। और इसलिए ईश्वर के सम्बन्ध में जो हम कहते हैं--चाहे उसे हम पिता कहें, चाहे मित्र कहें, चाहे प्रेमी कहें--कोई भी बात सच नहीं है; क्योंकि प्रेमी से जो हम समझते हैं, मित्र से जो हम समझते हैं, पिता से जो हम समझते हैं, परमात्मा उससे बहुत भिन्न और बहुत ज्यादा है। लेकिन हमारे पास और शब्द भी नहीं है। जीवन के कामचलाऊ शब्द हमारे पास हैं, उन्हीं को हम उसके सम्बन्ध में भी प्रयोग कर लेते हैं। और इसलिए जो भी सोचा, विचारा पढ़ा, लिखा, कहा जाता है, वह हमें उसकी जरा-सी भी झलक नहीं दिखा पाता।

मैंने सुना है, एक फकीर रास्ते से गुजर रहा था। सर्द रात थी और उसके हाथ-पैर ठण्डे हो गये थे। उसके पास वस्त्र नहीं थे। वह एक वृक्ष के नीचे रुका। सुबह जब उसकी नींद खुल गई तो हाथ-पैर हिलाना भी मुश्किल था। उसने किसी किताब में पढ़ा था कि जब हाथ-पैर ठण्डे हो जाते हैं तो

आदमी मर जाता है। किताबें पढ़कर जो लोग चलते हैं, वे ऐसी ही भूल में पड़ जाते हैं। उसने सोचा कि शायद मैं मर गया हूँ। उसे पता था कि मरे हुए लोग कैसे हो जाते हैं।

तो वह आँख बन्द करके लेट रहा। कुछ लोग उस रास्ते से गुजर रहे थे। तो उन्होंने उस आदमी को मरा हुआ समझ के उसकी अर्थी बनायी और उसे वे मरघट की तरफ ले चले। वे उस रास्ते पर पहुँचे, जहाँ चार रास्ते फूटते थे; और वे इस विचार में पड़ गये कि मरघट को कौन-सा रास्ता जाता है! वे अजनबी लोग थे; उस गाँव के रास्ते से परिचित न थे। वे चारों विचार करने लगे कि कोई मिल जाये गाँव का रहनेवाला तो हम पूछ लें कि मरघट को रास्ता कौन-सा जा रहा है। फकीर जिन्दा था। उसने सोचा कि बेचारे बड़ी मुश्किल में पड़ गये हैं। अब पता नहीं, गाँववाला कोई आयेगा कि नहीं आयेगा! तो वह अर्थी से बोला कि जब मैं जिन्दा हुआ करता था, तब मैं बायें रास्ते से मरघट जाता था। और हालाँकि अब मैं मर गया हूँ और बताने में असमर्थ हूँ, लेकिन इतनी बात तो कह ही सकता हूँ।

उन चारों ने घबड़ाकर अर्थी छोड़ दी। वह फकीर नीचे गिर पड़ा। उन्होंने कहा, तुम पागल हो? तुम बोलते हो? कहीं मरे हुए आदमी बोलते हैं! तो उस फकीर ने कहा: मैंने ऐसे जिन्दा आदमी देखे जो नहीं बोलते हैं। तो इससे उलटा भी हो सकता है कि कुछ मुर्दे ऐसे हों कि बोलते हैं। अगर कोई जिन्दा आदमी चाहे तो नहीं बोले, तो मुर्दा आदमी चाहे तो बोल नहीं सकता है? इसमें इतनी आश्चर्य की क्या बात है--वह फकीर कहने लगा।

मैंने भी यह कहानी सुनी तो मेरे मन में एक ख्याल आया--और वह कि असलियत और भी उलटी है। यह तो हो भी सकता है कि मुर्दा आदमी बोलता हुआ मिल जाये, यह जरा मुश्किल ही है कि जिन्दा आदमी और चुप हो जाये। जिन्दा आदमी न बोले, यह जरा मुश्किल ही है। यही ज्यादा आसान मालूम पड़ता है कि मरा हुआ आदमी बोल जाये।

हम सब जिन्दा हैं, लेकिन हमने जिन्दगी में एक क्षण भी न जाना होगा जब किसी-न-किसी रूप में हम नहीं बोल रहे हैं--या बाहर, या भीतर। हमने न बोलने का, साइलेन्स का, मौन का एक भी क्षण नहीं जाना। हमने बहुत जन्म देखे होंगे, लेकिन वे सब जन्म शब्दों के जन्म हैं। और हमने इस

जिन्दगी में जो बहुत दिन व्यतीत किये हैं, वे सब शब्द की यात्रा के दिन हैं। जब हम नहीं बोलते हैं, तब सोचते हैं। नहीं सोचते तो सपना देखते हैं। लेकिन शब्द बोलना किसी-न-किसी तल पर जारी रहता है। और जिस आदमी के शब्द अभी जारी हैं, वह परमात्मा को नहीं पहचान पायेगा। क्योंकि 'उसकी' पहचान निःशब्द में, मौन में, साइलेन्स में ही सम्भव है।

इसलिए परमात्मा के सम्बन्ध में सब कहा गया झूठ हो जाता है—क्योंकि उसे जब जाना जाता है, तब शब्द नहीं होते, विचार नहीं होते, थॉट नहीं होते, थिंकिंग नहीं होती; जब सब समाप्त हो जाता है, तब उसका अनुभव होता है। और जब हम उसे कहने जाते हैं, बताने जाते हैं, तब शब्द वापस उपयोग करने पड़ते हैं।

जिसे निःशब्द में जाना है, उसे शब्द में नहीं कहा जा सकता। जिसे मौन में जाना है, उसे वाणी कैसे प्रगट करेगी? और जिसे चुप्पी, गहन चुप्पी में अनुभव किया है, उसे बोलकर कैसे बताया जा सकता है? इसीलिए नास्तिक जीत जाते हैं, अगर आस्तिक से विवाद करें। आस्तिक की हार निश्चित है। आस्तिक नास्तिक से कभी भी जीत नहीं सकता है। न जीतने का कारण है : नास्तिक इनकार करता है; इनकार शब्दों में हो सकता है। आस्तिक स्वीकार करता है; स्वीकृति को शब्दों में बताना कठिन है। इसलिए आस्तिक निरन्तर मुश्किल में रहा है।

लेकिन आप अपने को आस्तिक मत समझ लेना, क्योंकि आस्तिक पृथ्वी पर मुश्किल से कभी कोई पैदा होता है। पृथ्वी पर दो तरह के नास्तिक हैं : एक वे जो जानते हैं कि नास्तिक हैं, और एक वे जो जानते नहीं कि नास्तिक हैं और अपने को आस्तिक समझते हैं। पृथ्वी पर आस्तिक बहुत मुश्किल से पैदा होता है, क्योंकि आस्तिक तभी होता है, जब वह परमात्मा को जान ले। उसके पहले कोई आस्तिक नहीं हो सकता। क्योंकि जिसे हमने जाना नहीं, उस पर आस्था कैसे आ सकती है? जिसे हम जानें, उसी पर आस्था आ सकती है।

लेकिन सारी दुनिया में बड़ी अजीब बातें सिखायी जाती हैं। आदमी को पता ही नहीं, परमात्मा का, हम उसे आस्था सिखा देते हैं, बिलीफ सिखा देते हैं—उसे कहते हैं, मानो। एक बच्चा पैदा हुआ, उसे हम कहते हैं—मानो, परमात्मा है।

ध्यान रहे, जिस चीज को भी कोई मान लेगा, वह फिर उसे जान नहीं सकता! मानना बहुत खतरनाक है, बिलीफ बहुत खतरनाक है।

मैं एक छोटे-से अनाथालय में गया। कोई सौ बच्चे थे। और अनाथालय के संयोजकों ने मुझे कहा कि हमारे बच्चों को हम धर्म की शिक्षा देते हैं। मैं थोड़ा चकित हुआ! मैंने कहा, धर्म की शिक्षा! धर्म की साधना तो हो सकती है, शिक्षा नहीं होती है। धर्म की शिक्षा हो ही नहीं सकती है, सिर्फ साधना हो सकती है। शिक्षा उन चीजों की हो सकती है जो हमसे बाहर हैं; कोई दूसरा हमें बता सकता है। लेकिन जो हमारे भीतर है, हमारे सिवा और कोई नहीं उसे बता सकता है। उसकी तरफ कोई इशारा ही नहीं हो सकता है। और जो भी इशारा होगा, वह झूठ हो जायेगा।

फिर भी मैंने कहा : आप कहते हैं तो मैं चलूंगा। उन्होंने कहा, आपको पता नहीं, हम सच में ही शिक्षा देते हैं। सौ बच्चे थे; अनाथ बच्चे हैं। अब अनाथ बच्चों को तो जो भी सिखाया जाये, सीखना ही पड़ेगा। उन अनाथ बच्चों से पूछा, ईश्वर है? उन बच्चों ने हाथ ऊपर उठा दिया। जैसे कोई गणित का सवाल हो, या जैसे कोई भूगोल या इतिहास की बात हो! उन बच्चों ने हाथ ऊपर उठा दिये कि हाँ, ईश्वर है।...सौ बच्चों ने!

मैं बहुत चकित हुआ। मैंने कहा, आदमी मृत्यु तक पता नहीं लगा पाता ईश्वर के होने का; इन बच्चों को अभी से पता लग गया!—यह बिलकुल चमत्कार है! और उन संयोजक ने पूछा, आत्मा है? बच्चों ने फिर हाथ उठा दिया। उन संयोजक ने पूछा, आत्मा कहाँ है? उन बच्चों ने हृदय पर हाथ रख दिये कि यहाँ।

मैंने एक छोटे-से बच्चे को पूछा, तुम बताओगे हृदय कहाँ है? उसने कहा, यह तो हमें सिखाया नहीं गया। जो सिखाया गया है, वह हम बता देते हैं। यह हमारी किताब में भी नहीं लिखा हुआ है। आप पूछते हैं, हृदय कहाँ है? उसमें लिखा है, आत्मा यहाँ है, वह हम बता दिये।

ये बच्चे कल बड़े हो जायेंगे, बूढ़े हो जायेंगे। सभी बच्चे एक दिन बूढ़े होते हैं। जो बूढ़े हो गये हैं, वे भी एक दिन बच्चे ही थे। ये बच्चे कल बड़े होंगे, बूढ़े होंगे और भूल जायेंगे कि वह हाथ, जो उन्होंने ईश्वर के लिए उठाया था—उठाये हुए हाथ, सिखाये हुए हाथ, झूठे हाथ होते हैं। बुढ़ापे में भी इनसे कोई पूछेगा, ईश्वर है? बचपन से सीखी गयी बात उठकर खड़ी

हो जायेगी। ये कहेंगे—हाँ, ईश्वर है। लेकिन वह बात सरासर झूठी होती है, सिखायी गयी होती है, जानी नहीं गयी होती है। रूस में वे बच्चों को दूसरी बात सिखाते हैं कि ईश्वर नहीं है। बच्चे वही सीख लेते हैं। बच्चों को सिखाते हैं, ईश्वर नहीं है, तो बीस करोड़ का मुल्क कहता है कि ईश्वर नहीं है।

मेरे एक मित्र रूस गये हैं। एक स्कूल में देखने गये। उस स्कूल के छोटे-छोटे बच्चों से उन्होंने पूछा, ईश्वर है? तो सारे बच्चे हँसने लगे। एक छोटे-से बच्चे ने कहा, आप भी कैसी बातें पूछते हैं?—एबसर्ड!—बेमानी! एक छोटे-से बच्चे ने कहा, गॉड वॉज़; ईश्वर हुआ करता था, १९१७ के पहले—अब कहाँ?

जब दुनिया में अज्ञान था, तब ईश्वर था। रूस में अब कोई ईश्वर नहीं है। हमको हँसी आयेगी, लेकिन हम भी उन बच्चों से भिन्न नहीं हैं। भिन्नता इस बात में है सिर्फ कि उन्हें सिखाया गया है कि ईश्वर नहीं है, हमें सिखाया गया है कि ईश्वर है। लेकिन दोनों थोपी बातें हैं, क्योंकि दोनों सिखायी गयी हैं। न वे जानते हैं कि ईश्वर नहीं है, न हम जानते हैं कि ईश्वर है। हमारी हालत बिलकुल एक-जैसी है। उन्हें लोग नास्तिक कहेंगे, हमें लोग आस्तिक कहेंगे। फिर आस्तिकों में भी हजार तरह के भेद हैं। हिन्दू कुछ और सीख लेता है, मुसलमान कुछ और सीख लेता है, जैन कुछ और सीख लेता है, बौद्ध कुछ और सीख लेता है। जो भी हमें सिखा दिया जाता है, हम वही सीख लेते हैं।

तो फिर और कोई ज्ञान नहीं है; या कि जो सिखा दिया गया है, वही ज्ञान है। अगर सिखाया हुआ ज्ञान है, तो हो सकता है एक दिन दुनिया में ईश्वर न रह जाये। क्योंकि सारी दुनिया को सिखाया जा सकता है कि ईश्वर नहीं है। सिखाया हुआ ज्ञान नहीं है; सिखाया हुआ तोते की तरह रटन्त है। और इस तोते की तरह रटन्त करनेवाले लोगों को हम आस्तिक समझ लेते हैं। इससे बड़ी भ्रान्ति हो जाती है।

आस्तिक मुश्किल से ही पैदा होते हैं। असल में आस्तिक तब पैदा होते हैं, जब हम जान पाते हैं कि 'वह' क्या है; सत्य क्या है; जो है, वह क्या है; दॅट व्हिच इज़—वह क्या है, जो है—जब हम उसे जानते हैं।

लेकिन ध्यान रहे, जो पहले से विश्वास कर लेता है, वह कभी जान

नहीं सकेगा। अगर आप जाने बिना ही नास्तिक बन गये हैं, आस्तिक बन गये हैं, हिन्दू बन गये हैं, मुसलमान बने हैं, तो आप भटक गये हैं। फिर आप कभी नहीं जान सकेंगे; क्योंकि आपने पहले ही उस बात को स्वीकार कर लिया है, जिसे आप नहीं जान रहे। और जो व्यक्ति इतनी भी हिम्मत नहीं जुटा पाता कि जिस बात को नहीं जानता है, कह सके कि नहीं जानता हूँ, वह व्यक्ति कैसे सत्य की खोज कर सकता है! सत्य की खोज की, परमात्मा की खोज की पहली शर्त यह है कि हम किन्हीं विश्वासों में न पड़ें, हम किसी पक्ष को स्वीकार न करें, हम खोजने निकलें।

मैंने सुना है, एक गाँव में एक फकीर मेहमान हुआ और उस गाँव के लोग आये और उस गाँव के लोगों ने कहा: हमारी मस्जिद में चलें और हमें समझायें ईश्वर के सम्बन्ध में। उस फकीर ने कहा, मुझे क्षमा करना, क्योंकि कितने लोग समझा चुके, कोई समझता ही नहीं। मुझे और परेशान मत करो। लेकिन जितना उसे मना किया, जैसी कि लोगों की आदत होती है कि जिस चीज को भी मना करो, लोग और आग्रहशील हो जाते हैं; जिस चीज को मना करो उनका मन और जोर से पकड़ने लगता है कि चलें, देखें, खोजें। इस दरवाजे पर लिख दिया जाये 'यहाँ झाँकना मना है, और फिर इस गाँव में शायद ही ऐसा आदमी मिले कि जो बिना झाँके निकल जाये। निषेध लोगों के लिए विशेष निमन्त्रण बन जाता है। इन्कार करो, और उन्हें आमन्त्रण हो जाता है।

वे फकीर के पीछे पड़ गये। फकीर टालने लगा है, वे और पीछे पड़ गये हैं। नहीं माने तो फकीर ने कहा—'चलो, मैं चलता हूँ।' वह उनके गाँव की मस्जिद में गया है। वे सब गाँव के लोग इकट्ठे हो गये हैं। वह फकीर मंच पर बैठा है और उसने कहा—'इसके पहले कि मैं कुछ बोलूँ, मैं तुमसे एक बात पूछ लूँ कि ईश्वर है, तुम जानते हो?—जानते हो, ईश्वर है?' उन सारे लोगों ने हाथ हिला दिये हैं। उन्होंने कहा कि हाँ, ईश्वर है। इसमें शक की बात ही नहीं, सन्देह का सवाल ही नहीं, हम सब मानते हैं कि ईश्वर है।

तो उस फकीर ने कहा, 'फिर मेरे बोलने की कोई जरूरत न रही, क्योंकि ईश्वर आखिरी ज्ञान है। जिसने भी उसे जान लिया, उससे बात करनी नासमझी है। मैं जाता हूँ।' वह नीचे उतर गया। उसने कहा, 'जब

तुम्हें ईश्वर तक का पता चल चुका है तो अब और मैं तुम्हें क्या बता सकूँगा? बात ही खत्म हो गयी, यात्रा का ही अन्त आ गया। यह तो अन्तिम अनुभव भी तुम्हें हो गया और अब तुम्हारे सामने बातें करूँ तो मैं अज्ञानी हूँ। मुझे क्षमा कर दो।

उन्होंने जब सुना, बड़ी मुसीबत में पड़ गये; क्योंकि जानता तो कोई भी नहीं था कि ईश्वर है। वे झूठे ही हाथ उठा दिये थे। उठाते वक्त ख्याल भी नहीं था कि हम झूठे हाथ उठा देते हैं।

अगर बहुत दिन तक झूठे हाथ उठाते रहें, तो आदमी खुद ही भूल जाता है कि ये उठाये गये हाथ झूठे हैं। आप भी मन्दिर की मूर्ति के सामने कभी सिर झुकाते हैं, तो कभी ख्याल किया है कि यह हाथ आप से सच में झुक रहा है या कि झूठा झुकाया जा रहा है। यह सिर्फ आदत है, सिखायी गयी बात है, या आपने भी कभी जाना है कि मूर्ति में कुछ है?

और बड़े आश्चर्य की बात है कि जिसे मूर्ति में कुछ दिख जायेगा, उसे सारी दुनिया में कुछ नहीं दिखेगा फिर? वह एक मन्दिर को खोजता हुआ सिर झुकाने आयेगा? फिर तो जहाँ भी दिखायी पड़ जायेगा—सब वही है, वहीं सिर झुका लेगा। अधार्मिकों के सिवाय मन्दिरों में शायद ही कोई कभी जाता है। धार्मिक तो कभी जाता नहीं देखा गया।

यह मैं नहीं कह रहा हूँ कि जो नहीं जाते हैं, वे धार्मिक हैं। न जाने से कोई धार्मिक नहीं होता, लेकिन धार्मिक शायद ही मन्दिर जाता देखा गया।

मस्जिद के लोग परेशानी में पड़ गये। लेकिन उन्होंने सोच-विचार किया कि इस फकीर को सुनना तो जरूर था, बड़ी गलती हो गयी। हमारा उत्तर ही ऐसा था कि आगे बोलने की जरूरत न रही। अब हम दूसरा देंगे; फिर एक बार फकीर को बुलाकर किसी तरह ले आओ। दूसरे को भेजकर फिर उन्होंने प्रार्थना की। उस फकीर ने कहा था कि मैं तो गया था पिछली बार, लेकिन तुम तो सब जानते ही हो। अब आगे और क्या बताना है? जो जानता ही हो, उसे जानने को शेष क्या रह जाता है? अब तुम जानते ही हो, तो बात क्या करनी है? पर उन लोगों ने कहा : हम वे लोग नहीं हैं, हम दूसरे लोग हैं।

फकीर भी भलीभाँति जान रहा था कि ये वही हैं। उसने कहा, ठीक है, धार्मिक आदमी का कभी कोई भरोसा नहीं है! जरा में बदल जाये।

तथाकथित धार्मिक, वे जो सो कॉल्ड रिलीजस हैं, उनके बदलने का कोई भरोसा भी नहीं। अभी कुरान पढ़ रहे हैं, अभी छाती में छुरा भोंक दें! अभी गीता पढ़ रहे थे, किसी की स्त्री को लेकर भाग जायें! इसमें कोई कठिनाई नहीं है।

धार्मिक आदमी से ज्यादा गैर भरोसे का आदमी इस पृथ्वी पर कभी नहीं पाया गया है—क्योंकि जिसको हम धार्मिक कहते हैं, सच में वह धार्मिक ही नहीं है। थोथा, सूडो रिलीजस, झूठा, सिर्फ माना हुआ धार्मिक है। धर्म का उसके जीवन में कोई सम्बन्ध नहीं है। अगर धर्म का सम्बन्ध हो जाये तो आदमी न हिन्दू रहेगा, न मुसलमान, न ईसाई। धर्म भी दस हो सकते हैं?...हजार हो सकते हैं? सत्य भी हजार तरह का हो सकता है? गणित एक तरह की होती है—चाहे तिब्बत में, चाहे चीन में, और चाहे हिन्दुस्तान में, चाहे रूस में—सब जगह गणित एक है। और केमिस्ट्री भी एक है, और फिजिक्स एक है। साइन्स एक है, लेकिन धर्म हजार हैं!

सिर्फ झूठ हजार तरह के हो सकते हैं, सत्य हजार तरह के नहीं हो सकते। अगर कोई कहे, हिन्दुओं की केमिस्ट्री अलग है और मुसलमानों की केमिस्ट्री अलग है, तो समझ लो कि इन दोनों को पागलखानों में भर्ती करना पड़ेगा। इसके सिवाय कोई उपाय नहीं रहा, क्योंकि केमिस्ट्री कैसे अलग हो सकती है! पानी चाहे हिन्दू गरम करे, चाहे मुसलमान, सौ डिग्री पर भाप बनता है। और कोई उपाय नहीं है कि कुरान पढ़नेवाला कम डिग्री पर भाप बना दे और गीता पढ़नेवाला ज्यादा डिग्री पर भाप बना दे। पानी सौ डिग्री पर भाप बनता ही है, यह सत्य सार्वलौकिक है, यह युनिवर्सल है। धार्मिक आदमी सिर्फ धार्मिक होता है—जस्ट रिलीजस—न हिन्दू, न मुसलमान, न ईसाई। ये सब अधार्मिकों के सिरों पर लगे हुए लेबल हैं। धर्म कैसे हो सकते हैं पचास तरह के? जब पदार्थ का नियम एक है, तो परमात्मा का नियम कैसे अनेक हो सकता है?

उस फकीर के फिर जब पीछे पड़ गये तो उसने कहा—ठीक है, तुम कहते हो तो हम चलेंगे। वह गया। वह मंच पर खड़ा हुआ। उस गाँव के लोगों ने सोच-विचार करके तय कर लिया था कि उत्तर अब दूसरा देना है। फकीर ने कहा—मैं पूछ लूँ वही बात, कि ईश्वर है?.. तुम मानते हो?...जानते हो? तुम्हें इसका अनुभव हो गया है? सारे मस्जिद के लोग

चिल्लाये--कैसा उत्तर? हमें कुछ पता नहीं, न हम मानते, न हम जानते--अब आप बोलिये।

उस फकीर ने कहा, जिसे तुम मानते ही नहीं, जानते ही नहीं, उसके सम्बन्ध में बात करने से फायदा क्या है? जिसकी तुम्हें कोई खबर ही नहीं, उसका तुम प्रश्न कैसे उठाते हो?...किस ईश्वर की बात कर रहे हो?...किस ईश्वर की मैं बात करूँ?

गाँव के लोग फिर मुसीबत में पड़ गये कि यह तो बडा धोखेबाज आदमी मालूम पड़ता है। पिछली बार हमने हाँ भरी तो उसने कहा, तुम्हें पता ही हो गया, बात खत्म; अब हम इन्कार करते हैं तो वह कहता है, जिसको तुम जानते नहीं, मानते नहीं, जिसका तुम्हें कोई पता नहीं, उसको बात भी क्यों करनी? बात करने के लिए कुछ शुरुआत तो चाहिये कि किसकी मैं बात करूँ, किससे मैं बात करूँ? मैं जाता हूँ।

गाँव के लोगों ने कहा : यह तो बड़ी मुश्किल हो गयी, यह आदमी कैसा है? फिर उन्होंने कहा, अब हम क्या करें, लेकिन इसे सुनना जरूरी है। इस आदमी की आँखों से लगता है कि कुछ जानता है। इस आदमी के व्यक्तित्व से लगता है कि इसे कुछ खबर है। शायद हम ठीक उत्तर नहीं दे पा रहे, हम क्या करें? उन्होंने तीसरा उत्तर तैयार किया। फिर फकीर को समझा-बुझाकर ले आये। उसने कहा, तुम क्यों परेशान हो रहे हो? उन्होंने कहा, अब दूसरा ही उत्तर है हमारे पास।

फकीर ने कहा, सोचे-विचारे उत्तर का कोई मतलब नहीं होता, पागलो! तुम सोच-विचार के तय करते हो, सब झूठ होता है। जो सच होता है, उसे सोच-विचारकर तय नहीं करना पड़ता है, वह तय होता है। और जिसे हम सोच-विचारकर तय करते हैं, वह कभी सच नहीं होता है! सिर्फ असत्यों के लिए सोचना पड़ता है, सत्य के लिए सोचना नहीं पड़ता है। और अगर सत्य के लिए भी सोचना पड़े तो वह असत्य ही होगा। सत्य को जानना पड़ता है, सोचना नहीं पड़ता है। असत्य को सोचना पड़ता है। इसलिए असत्य बोलनेवाला सोच-विचार में, चिन्ता में, परेशानी में पड़ जाता है। सत्य बोलनेवाले को परेशानी नहीं होती है, क्योंकि चिन्ता का कोई कारण नहीं है—जो है, वह है; जो नहीं है, वह नहीं है!

फिर भी गाँव के लोग नहीं माने, उन्होंने कहा : एक बार और समझायें; बड़ी कृपा होगी। वह फकीर फिर मंच पर खड़ा हो गया। उसने फिर पूछा, कि मित्रो, मैं फिर वही बात पूछ लूँ : ईश्वर है?...तुम मानते हो?...जानते हो?...पहचानते हो?...कुछ खबर है उसकी? तो उन लोगों ने तय किया था, अगर हम भी उस गाँव में होते--यह हो सकता है, हममें से कुछ लोग उस गाँव में रहे भी हों! तो हमने भी यही तय किया होता; आधी मस्जिद के लोगों ने कहा—हाँ, हम ईश्वर को मानते हैं; आधों ने कहा, हम नहीं मानते; अब आप बोलिये।

उस फकीर ने कहा, तुम बड़े नासमझ हो! जिनको मालूम है, वे उनको बता दें जिनको मालूम नहीं है—मेरे बोलने की क्या जरूरत है? तुम मेरे पीछे क्यों पड़े हो? तुम मुझे क्यों परेशान करते हो? अब तो कोई जरूरत भी नहीं है बीच में, मैं कौन हूँ? कुछ जानते हैं, कुछ नहीं जानते हैं; आपस में एक-दूसरे को समझा-बुझा लें, मैं यहाँ से चला। और फकीर ने चलते वक्त उनसे कहा कि हिम्मत हो तो फिर चौथी बार आना।

लोग बहुत मुश्किल में पड़ गये। बहुत सोचा, लेकिन चौथा उत्तर न मिला। करते भी क्या? एक उत्तर 'हाँ' का, एक 'ना' का, फिर दोनों उत्तर मिलाकर दे दिये, 'हाँ' और 'ना' का। ये तीन तो विकल्प दिखायी पड़ते हैं, कोई चौथा अल्टरनेटिव नहीं है। बहुत परेशान हुए। फकीर दो-तीन दिन गाँव में रुका रहा और घूम-घूमकर लोगों से कहता रहा—क्यों, अब नहीं आते? लेकिन गाँव के लोग कुछ भी न सोच पाये कि अब क्या करें? आखिर उस फकीर को वह गाँव छोड़ देना पड़ा। किसी दूसरे आदमी ने दूसरे गाँव में उस फकीर से पूछा कि हमने सुना है कि उस गाँव के लोग फिर न आये? अगर वे आते तो तुम समझाते ईश्वर को? उसने कहा, फिर मुझे समझाना नहीं पड़ता। उस आदमी ने कहा, कि तुमने तीन बार में क्यों नहीं समझाया? उसने कहा, मैं ठीक उत्तर की प्रतीक्षा करता था।

'क्या ठीक उत्तर हो सकता है?' तो उस फकीर ने कहा : अगर उस गाँव के लोग चुप रह जाते और कोई उत्तर न देते, तो ही मैं कुछ बोल सकता था। तब वे ईमानदार होते—ऑनेस्ट; क्योंकि ईश्वर के सम्बन्ध में न तो हमें पता है कि वह है, न हमें पता है कि वह नहीं है; हम बेईमान हैं, अगर हम कोई उत्तर दे दें। लेकिन यह बेईमानी धार्मिक किस्म की है। और जब बेईमानी धार्मिक किस्म की होती है तो पहचानना बहुत मुश्किल

है; क्योंकि उस बेईमानी के चारों तरफ धार्मिकता का पर्त चढ़े हुई है।

हमारा उत्तर क्या है? अगर हम सच में ईमानदार हैं, ऑनेस्ट हैं, तो हम कहेंगे--कोई भी उत्तर तो हमारे पास नहीं है; हमें कुछ भी तो पता नहीं है। हम इतना भी नहीं कह सकते कि वह है; इतना भी नहीं कह सकते कि वह नहीं है। और जो व्यक्ति इतनी सचाई पर खड़ा हो जाये कि मुझे कुछ भी पता नहीं, उस व्यक्ति की सच्ची आस्तिकता की यात्रा शुरू हो जाती है। क्योंकि अगर मुझे यह अनुभव हो जाये कि मुझे कुछ भी पता नहीं है तो हम इतनी पीड़ा में, इतने कष्ट में पड़ जायेंगे कि वह पीड़ा, वह कष्ट, वह अज्ञान हमें धक्के देगा कि हम खोज पर निकलें कि हम जायें और पता निकालें।

लेकिन हम बड़े अद्‌भुत लोग हैं! हमें पता कुछ भी नहीं है और हम मानकर बैठ गये हैं कि पता है, इसलिए यात्रा भी नहीं करते। अब कोई बीमार आदमी समझ ले कि मैं स्वस्थ हूँ, तो फिर वह इलाज की क्या फिक्र करे? इलाज की फिक्र तो इस बात से शुरू होती है कि ज्ञात हो कि मैं बीमार हूँ; तो हम स्वास्थ्य की तरफ भी जा सकते हैं।

पृथ्वी पर झूठी आस्तिकता है, और इसीलिए धार्मिक जीवन निर्मित नहीं हो पा रहा है। और झूठी आस्तिकता का आधार है--विश्वास, बिलीफ। और सारी दुनिया में यही समझाया जाता है कि विश्वास करो, यकीन लाओ, श्रद्धा रखो, मानो--पूछो मत, सन्देह मत करो, शक मत करो, अविश्वास मत करो।

बड़ी उल्टी बात सिखायी जा रही है। जो आदमी विश्वास में जियेगा, वह कभी भी अनुभव तक नहीं पहुँचता। अनुभव तक केवल वे ही लोग पहुँचते हैं, जो झूठे विश्वासों में नहीं जीते--झूठे अविश्वासों में भी नहीं जीते। अविश्वास, डिसबिलीफ भी एक तरह का विश्वास है--विरोधी विश्वास; निगेटिव बिलीफ।

ईमानदार आदमी चुप खड़ा हो जाता है कि मुझे पता नहीं ...

... डी० एच० लॉरेन्स एक बगीचे में घूम रहा है। वह अद्‌भुत आदमी था। एक छोटा बच्चा उसके साथ घूम रहा है और वह लॉरेन्स से पूछता है--जैसा कि छोटे बच्चे अक्सर सवाल उठा देते हैं, जिनका कि बूढ़े भी उत्तर नहीं दे सकते। लेकिन इतने हिम्मतवर बूढ़े कम होते हैं, जो मान लें

बच्चों के सामने इस बात को कि मुझे उत्तर का पता नहीं है। इसी तरह के कमजोर बूढ़ों ने दुनिया को परेशानी में डाल रखा है। बच्चे प्रश्न उठाते हैं, सीधा-सा।...वृक्षों को देखा है और हाथ उठा के लॉरेन्स से पूछा है कि "व्हाई दी ट्रीज़ आर ग्रीन; --वृक्ष हरे क्यों हैं?" लॉरेन्स ने कहा--"दी ट्रीज़ आर ग्रीन, बिकॉज दे आर ग्रीन!—वृक्ष हरे हैं, क्योंकि वृक्ष हरे हैं"। बच्चे ने कहा, "यह भी कोई उत्तर हुआ। यह कोई उत्तर है? हम पूछते हैं, वृक्ष हरे क्यों हैं? आप कहते हैं--हरे हैं, क्योंकि हरे हैं। यह कोई उत्तर हुआ?" लॉरेन्स ने कहा कि उत्तर का मतलब सिर्फ इतना है कि मुझ पता नहीं है, और मैं झूठ नहीं बोल सकता हूँ।

इस आदमी का भाव देखते हैं, वह कहता है: मुझे पता नहीं!

यह धार्मिक आदमी का पहला लक्षण है कि वह साफ हो गया है इस बात में कि मुझे क्या पता है, और क्या पता नहीं है? क्या आप साफ हैं? आपने कभी लेखा-जोखा लिया है कि मुझे क्या पता है, और क्या पता नहीं है? आप बहुत हैरान हो जायेंगे। शायद ही, जीवन का कोई परम सत्य पता हो। लेकिन जिन बातों का हमें बिलकुल पता नहीं है, हम जोर-जोर से टेबल ठोंक-ठोंक के कहते हैं कि हमें पक्का पता है। न केवल टेबल ठोंकते हैं, दूसरे की छाती में छुरा भी भोंकते हैं। मुझे जो पता है, वह ज्यादा ठीक है; तुम्हें जो पता है, वह गलत है।

आश्चर्य कि जिन सत्यों के सम्बन्ध में हमें कोई भी बोध नहीं है, उनके सम्बन्ध में हम कितने पागल हैं, कितने आक्रमक, कितने अग्रेसिव हैं। समझ के बाहर है यह बात, लेकिन यही बात हमारी स्थिति बनी है। इस स्थिति को तोड़ना जरूरी है।

तो मैं आपसे निवेदन करना चाहूँगा कि कभी एकान्त क्षणों में इस पर सोचना कि धर्म के सम्बन्ध में मुझे क्या पता है? निश्चित ही गीता के सूत्र आपको याद होंगे, कुरान की आयतें भी याद होंगी, बाइबिल के वचन भी कण्ठस्थ हो सकते हैं, लेकिन ध्यान रखना कि वह आपका ज्ञान नहीं है। वह गीता में जो है, वह कृष्ण का ज्ञान रहा होगा, आप उसे पढ़कर अपना ज्ञान नहीं बना सकते हैं। बारोड, उधार, लिया हुआ ज्ञान अज्ञान से बुरा है। क्योंकि अज्ञान कम-से-कम अपना तो होता है। इतना कहें कि अज्ञान मेरा है। कम-से-कम प्रामाणिक, अथैन्टिक तो होता है, कि मेरा है। ज्ञान उधार है

तब, और अज्ञान हमारा है।

ध्यान रहे, मेरे अज्ञान को, मैं सारी दुनिया के ज्ञान को भी इकट्ठा कर लूँ, तो भी नहीं मिटा सकता हूँ; क्योंकि अज्ञान मेरा है और ज्ञान दूसरे का है। दूसरे का ज्ञान मेरे अज्ञान को नहीं मिटा सकता है। कैसे मिटा सकता है? दोनों कहीं कटते ही नहीं। दोनों कहीं एक-दूसरे को स्पर्श भी नहीं करते। दूसरे का ज्ञान, अज्ञान से भी खतरनाक होता है।

मैंने सुना है कि एक अन्धा अपने एक मित्र के घर मेहमान है। रात बहुत-बहुत भोजन बने हैं, खीर बनी है। उस अन्धे आदमी ने अपने मित्रों से पूछा, 'यह खीर क्या है?' इस चीज को तुम ठीक-से कहो कि कैसी है, किससे बनी है? मुझे कुछ समझाओ, मुझे बहुत पसन्द पड़ी है।'

वे मित्र समझदार रहे होंगे। दुनिया में नासमझ आदमी तो मुश्किल से मिलता है, क्योंकि सभी समझदार हैं। वे भी समझदार हैं। उन्होंने उस अन्धे आदमी को समझाया है कि खीर जो है, वह दूध से बनी है। उस अन्धे आदमी ने कहा, यह दूध क्या है? कैसा होता है? क्या है रंग, क्या है रूप? उन समझदारों ने कहा कि दूध बिल्कुल शुभ्र, सफेद होता है। उस अन्धे आदमी ने कहा, मुझे मुश्किल में डाले दे रहे हो। मेरा पहला प्रश्न वहीं-का-वहीं खड़ा रहता है। तुम जो जवाब देते हो, उससे और नये प्रश्न खड़े हो जाते हैं। यह सफेदी क्या बला है? यह सफेदी क्या है? यह सफेदी कैसी होती है? यह शुभ्र किसको कहते हो तुम?

समझदार, कम समझदार न थे। एक समझदार आगे बढ़ा और उसने कहा, कभी बगुला देखा है नदी किनारे? तालाब के तट पर? झील के पास सफेद बगुला! ठीक बगुले के पंखों-जैसा सफेद होता है दूध। उस अन्धे आदमी ने कहा, तुम पहेलियों में उलझाये दे रहो हो। यह बगुला क्या बला है, कैसा होता है? कुछ मुझे ऐसे समझाओ कि मैं समझ सकूँ।

तो एक समझदार आदमी ने अपना हाथ आगे बढ़ाया और उस अन्धे आदमी को कहा कि मेरे हाथ पर हाथ फेरो। अन्धे आदमी ने हाथ पर हाथ फेरा। यह कोई समझ में आनेवाली बात थी, क्योंकि स्पर्श अनुभव हुआ। उस समझदार आदमी ने कहा, जैसे मेरे हाथ तुमको सुडौल मालूम होते हैं, वैसे ही बगुले की गर्दन सुडौल होती है। वह अन्धा आदमी खड़े होकर नाचने लगा; उसने कहा, मैं समझ गया कि दूध सुडौल हाथ की तरह

होता है। मैं बिलकुल समझ गया। वे सब मित्र कहने लगे--क्षमा करो; इससे तो बेहतर था कि तुम न जानते यह जानना तो और मुश्किल में डाल दिया। नहीं, दूध सुडौल हाथ की तरह नहीं होता है। उस अन्धे आदमी ने कहा, मुझे क्यों मुश्किल में डालते हो, तुमने तो मुझे समझाया है। असल बात यह है कि अन्धे आदमी को सफेद रंग के सम्बन्ध में कुछ भी समझाया नहीं जा सकता है, और जो समझाने जाता है वह निपट नासमझ है। अन्धे आदमी की आँख का इलाज हो सकता है। सफेद रंग नहीं बताया जा सकता, आँख का इलाज हो जाये तो सफेद रंग दिखायी पड़ सकता है; और कोई उपाय नहीं है।

हम सब, जहाँ तक सत्य का सम्बन्ध है, अन्धे हैं। हमें कुछ पता नहीं है। और हम सब ने किताबों में से कुछ समझ लिया है, वह उसी अन्धे आदमी के हाथ की तरह है। वह उसी अन्धे आदमी की धारणा की भाँति है। हम उसको पकड़कर बैठे हुए हैं और हम जिन्दगी-जिन्दगी पकड़ के बैठे रहें, उससे हम कहीं पहुँचेंगे नहीं।

पहली बात जाननी जरूरी है कि हम अन्धे हैं, दूसरी बात जाननी जरूरी है कि हमें कुछ भी दिखायी नहीं पड़ता--जहाँ तक ईश्वर का, सत्य का सम्बन्ध है, हमें कुछ दीखता नहीं है; हमें दिखायी नहीं पड़ता। तो यह पहली सचाई होगी; जिसे हमें स्वीकार कर लेना होगा, तभी उससे आगे बढ़ा जा सकता है। तो हम सोच सकते हैं कि यह आँख कैसे ठीक हो, ताकि हम जान सकें। लेकिन जिसने मान लिया, वह यह पूछता ही नहीं कि हम जान सकें। वह तो मान लेता है कि जान लिया। वह तो विश्वास को, बिलीफ को धीरे-धीरे ज्ञान बना लेता है। उसे पता ही नहीं चलता कि मैंने गीता में ऐसा कहा है। तब वह समझने लगता है, ऐसा मैं जानता हूँ। मैं देखता हूँ, लोग बैठे हैं--धार्मिक लोग; आँख बन्द करके सोच रहे हैं--"अहं ब्रह्मास्मि"; मैं ब्रह्म हूँ। क्योंकि किताब में पढ़ लिया है। अब दोहरा रहे हैं कि 'मैं ब्रह्म हूँ'। अब दोहराते भी हैं।

क्या दोहराने से पता चल जायेगा कि आप ब्रह्म हैं? कैसे पता चल जायेगा? जब पहली बार आपने दोहराया कि मैं ब्रह्म हूँ, तब आपको पता नहीं था। जब आपने दूसरी बार दोहराया, तब भी आपको पता नहीं था। जब आपने तीसरी बार दोहराया, तब भी आपको पता नहीं था। और अगर

पता हो गया, तो चौथी बार दोहराया ही क्यों? तो चौथी बार दोहराया, तब भी पता नहीं है। हजार बार, लाख बार, करोड़ बार दोहराने से पता कैसे होगा?

रिपीटीशन नॉलेज बन जाता है? दोहरानें से ज्ञान पैदा हो जाता है? तब तो बड़ा सस्ता मामला है। तब तो हिटलर ने ठीक लिखा है अपनी आत्मकथा में। उसने लिखा है कि दुनिया में 'सफेद झूठ जैसी' कोई चीज नहीं होती; जिस झूठ को बार-बार दोहराओ, वही सत्य हो जाता है। तब तो फिर हिटलर परम ज्ञानी है।

और मजे की बात यह है कि हम हिटलर को कभी ज्ञानी न कहेंगे; लेकिन हम यही कर रहे हैं—ज्ञानी के लिए। फिर यह बात जरूर सत्य है कि अगर असत्य को भी बार-बार दोहराया जाये, तो हम धीरे-धीरे यह भूल जाते हैं कि यह असत्य है। दूसरे दिन हम खुद भूल जाते हैं। अगर आप बचपन से एक असत्य को दोहराते रहें, तो बुढ़ापे तक याद रखना जरा मुश्किल हो जायेगा कि यह असत्य था; और मैंने जब पहली बार दोहराया था तो असत्य था, और मुझ पता नहीं था। यह सही है कि आप निरन्तर दोहराने से सिर्फ भूल सकते हैं, लेकिन ज्ञान नहीं हो सकता है; सिर्फ इतना भूल सकते हैं।

मैंने सुना है, एक पत्रकार मर गया और मरके स्वर्ग के दरवाजे पर पहुँच गया। जर्नलिस्ट था, अखबारवाला था। अब अखबारवाला था, उसने कहा, सीधे स्वर्ग में मुझें जगह मिलनी चाहिए; और यहाँ कोई मिनिस्टर या कोई भी दरवाजा खटखटाये, तो दरवाजा खुलता था! समझा होगा, भगवान भी उससे डरता होगा जरूर। अखबारवाले से कौन नहीं डरता? जाकर उसने सीधा दरवाजा खटखटाया। द्वारपाल ने बाहर झाँककर देखा, उसने कहा—दरवाआ खोलो, मैं एक बड़े अखबार का रिपोर्टर हूँ और मैं मर गया हूँ, मैं स्वर्ग में रहना चाहता हूँ।

उस द्वारपाल ने कहा, माफ करिये। पहली तो बात यह है कि स्वर्ग में कोई घटनाएँ नहीं घटतीं, न्यूज ही नहीं घटता। क्योंकि न्यूज के लिए भी तो उपद्रवी आदमी चाहिए--राजनीतिज्ञ चाहिएँ; गुण्डे चाहिएँ, बदमाश चाहिएँ; यहाँ कोई आता ही नहीं, इस तरह के लोग। हालाँकि जमीन पर जो भी मरता है, वह सभी स्वर्गीय ही लिखे जाते हैं! सब स्वर्ग चले जाते हैं, ऐसा हम मानते हैं; जाता मुश्किल से कोई कभी होगा।

उस द्वारपाल ने कहा, यहाँ कोई घटना ही नहीं घटती। अखबार कहाँ चले? और यहाँ तो एक निश्चित कोटा है। दस अखबारवालों को हमने जगह दी हुई है, लेकिन वे भी बेकार हैं। कोई काम में नहीं हैं वे! और अखबार भी निकलेगा तो कोई पढ़ने को राजी नहीं होगा। इसलिए वह ठप्प ही पड़ा है काम। अगर तुम्हें जाना है तो नर्क चले जाओ, वहाँ बहुत अखबार चलते हैं; बड़े अखबार चलते हैं; बहुत सर्कुलेशन है अखबारों का। वहाँ घटनाएँ भी खूब घटती हैं; घटनाएँ-ही-घटनाएँ हैं वहाँ तो। जहाँ देखो, वहीं घटना घट गयी है!

पर उसने कहा, मुझे तो स्वर्ग में ही रहना है। आप एक चीज कर सकते हैं, मुझे चौबीस घन्टे के लिए भीतर ले लें। मैं दस अखबार वालों में से एक को राजी कर लूँगा कि वह नर्क चला जाये। तो फिर तो जगह खाली मिलेगी मुझे।

उस द्वारपाल ने कहा, आप आ जायें, चौबीस घण्टे आप कोशिश कर लें। वह अखबारवाला भीतर गया। जो भी आदमी मिला, उसने कहा, सुना तुमने, नर्क में एक बहुत नया अखबार निकलनेवाला है। उसके लिए एक बड़े सम्पादक की, चीफ एडिटर की जरूरत है। मोटर भी मिलेगी, बंगला भी मिलेगा, सब इन्तजाम भी है, बड़ी तनख्वाह भी है। उसने पूरे स्वर्ग में खबर फैला दी। शाम को वह वापस द्वारपाल के पास आया। उसने पूछा, कहो, कोई गया है?

द्वारपाल ने दोनों हाथ रोककर उससे कहा कि ठहरो, वे दसों चले गये और अब तुम नहीं जाओ, क्योंकि यहाँ तो हम बहुत मुश्किल में पड़ जायेंगे। दस का कोटा है, वे दसों भाग गये हैं। वे कहते हैं, हमको नर्क जाना है। सब चले गये। लेकिन उस अखबारवाले ने कहा, हाथ तो हटाओ, मैं भी जाऊँगा।

उसने कहा, तुम कैसे पागल हो? उसने कहा, कौन जाने, बात सच भी हो सकती है कि अखबार वहाँ निकल रहा हो। क्योंकि मैंने जिससे भी सुना दिन में, सभी यही कह रहे हैं कि अखबार निकलनेवाला है। यहाँ स्वर्ग में एक ही जगह है। कौन जाने! उस द्वारपाल ने कहा--पागल, सुबह तूने ही यह झूठ शुरू किया था। उसने कहा, सुबह तो बहुत देर हो गयी है; बात सच भी हो सकती है। मैं लेकिन यहाँ नहीं रहना चाहता हूँ।

झूठ भी हो तो कोई हर्जा नहीं है। जब दस आदमियों ने मान लिया तो बात में कुछ-न-कुछ जान होनी ही चाहिए।

हम भी भूल ही जाते हैं कि हमने झूठ स्वीकार किया था खुद। और और अगर बोलते ही चले जायें तो आखीर में यह पता ही न रहेगा कि यह झूठ है। दोहराने से कोई सत्य नहीं होता है। हम किताबें पढ़ लेते हैं—ईश्वर के सम्बन्ध में; आत्मा के सम्बन्ध में बातें सीख लेते हैं, फिर उनको दोहराने लगते हैं और दोहराते-दोहराते मर जाते हैं। हम कुछ जान नहीं पाते।...तो क्या करें?

मैं आपसे निवेदन करना चाहता हूँ कि पहली बात तो यह समझें कि हम अज्ञानी हैं—परम अज्ञानी हैं। एब्सोल्यूट इगनोरेन्स है, सत्य के सम्बन्ध में। यह पहला कृत्य होगा। यह पहला चरण होगा मन्दिर का, परमात्मा का। और जब परम अज्ञान है हमारा, दूसरे के ज्ञान से ज्ञान मिल नहीं सकता—कितनी ही गीता कण्ठस्थ करो, और कितने ही ब्रह्म-सूत्र पढ़ो, ज्ञान नहीं मिल सकता है किसी किताब से, न किसी गुरु से। ट्रान्सफरेबल नहीं है। वह कोई ऐसी चीज नहीं है, किसी ने मुट्ठी भरी और आपको दे दी। अगर ऐसा होता तो एक ही गुरु सारी दुनिया में ज्ञान बाँट जाता। फिर कोई जरूरत न रहती। कोई किसी को ज्ञान दे नहीं सकता। अगर मृत्यु को जानना है, तो खुद मरना पड़ता है; और अगर ज्ञान को उपलब्ध करना है, तो खुद उस मार्ग से गुजरना पड़ता है, जहाँ ज्ञान उपलब्ध होता है।...क्या है यह मार्ग?

समस्त विचारों से मुक्त हो जाना, पूर्ण शून्य में ठहर जाना। मौन, पूर्ण मौन में उतर जाना, वह मार्ग है। यदि हम क्षणभर को भी पूर्ण मौन में हो सकें—कम्प्लीट साइलेन्स में हो सकें, तो हम उसे जान लेंगे, जो है।

...क्यों?...आखिर मौन में होने से क्यों जान लेंगे?

जब तक हमारा मन शब्दों से भरा है; विचारों से भरा है, तब तक बेचैन है। तब तक ऐसा है; जैसे झील पर तरंगें हैं। चाँद है आकाश में, और झील तरंगों से भरी है, तो चाँद का प्रतिबिम्ब नहीं बनता फिर। जब झील शान्त हो गयी, कोई तरंग नहीं है, झील मौन हो गयी, एक लहर भी नहीं है झील की छाती पर—झील बिलकुल शान्त हो गयी है, तो झील एक दर्पण बन जाती है और चाँद उसमें प्रतिफलित हो जाता है; रिफलेक्ट हो

जाता है, दिखायी पड़ने लगता है।

मौन की स्थिति में हम बन जाते हैं दर्पण, शान्त। और जो है, वह उसमें प्रतिफलित हो जाता है, उसमें दिखायी पड़ता है।

मनुष्य को बनना है दर्पण—चुप, एक लहर भी न हो मन पर। तो हम उसी क्षण में, जो है, उसी का नाम परमात्मा हम कहें, सत्य कहें, जो भी नाम देना चाहें, नाम से कोई फर्क नहीं पड़ता है। नाम के झगड़े सिर्फ बच्चों के झगड़े हैं। कोई भी नाम दे दें—एक्स वाई जेड दे दें—तो भी चलेगा। वहाँ जो है, अननोन, अज्ञात, वह हमारे दर्पण से प्रतिफलित होता है, और हम जान पाते हैं। तब है आस्तिकता, तब है धार्मिकता। तब धार्मिक व्यक्ति का जन्म होता है।

अद्‌भुत है आनन्द उसका। सत्य को जानकर कोई दुखी हुआ हो, ऐसा सुना नहीं गया। सत्य को बिना जाने कोई सुखी हो गया हो, ऐसा भी सुना नहीं गया। सत्य को जाने बिना आनन्द मिल गया हो, किसी को, इसकी कोई सम्भावना नहीं है। सत्य को जानकर कोई आनन्दित न हुआ हो, ऐसा कोई अपवाद नहीं है। सत्य आनन्द है, सत्य अमृत है, सत्य सब-कुछ है। जिसकी हमारे लिए आकांक्षाएँ है, जिसे पाने की प्यास है, प्रार्थना है। लेकिन हम दर्पण नहीं है, जिसमें सत्य प्रतिफलित हो सके।

एक युवा फकीर सारी दुनिया का चक्कर लगाकर अपने देश वापस लौटा है। उस देश का सम्राट बचपन में उसके साथ एक ही स्कूल में पढ़ा था। वह फकीर सम्राट के पास गया। सारी पृथ्वी से घूमकर लौटा है फकीर, अर्धनग्न, फटे वस्त्र। सम्राट गले मिला है। बैठते ही सम्राट ने पूछा है, सारी दुनिया घूमकर आये हो, मेरे लिए कुछ लाये हो? जिनके पास सब-कुछ होता है, उनके मन में भी और कुछ की वासना तो बनी ही रहती है। वह सम्राट उस फकीर से माँगने लगा कि मेरे लिए कुछ लाये हो? फकीर ने कहा—मुझे ख्याल था निश्चित ही कि तुम जरूर मिलते ही पहली बात यही पूछोगे। जिसके पास बहुत है, पहली बात उनके मन में यही उठती है। तो मैं तुम्हारे लिए कुछ ले आया हूँ।

सम्राट ने चारों तरफ देखा, फकीर के पास तो कुछ मालूम नहीं पड़ता है। हाथ खाली है, झोला भी साथ नहीं। सम्राट ने कहा, क्या ले आये हो? फकीर ने कहा, मैंने बहुत खोजा, बहुत खोजा, बड़े-बड़े बाजारों में, बड़ी-

बड़ी राजधानियों में, लेकिन मैं सोचता था कि कोई ऐसी चीज ले चलूं जो तुम्हारे पास न हो। लेकिन जहां भी गया, मुझे ख्याल आया, यह सब तुम्हारे पास जरूर होगा। तुम कोई छोटे सम्राट नहीं, देखता हूँ तुम्हारे महल में सभी कुछ है। भूल हो जाती है बड़ी। मैं तो कुछ भी नहीं लाया। फिर एक चीज मुझे मिल गयी, जो मैं लाया हूँ।

सम्राट तो खड़ा हो गया। उसने कहा, ऐसी कोई चीज लाये हो, जो मेरे पास नहीं है? देखें, जल्दी निकालो, मेरी उतसुकता को ज्यादा मत बढ़ाओ। उस फकीर ने खीसे में हाथ डाला, फटे कुर्ते से एक दो पैसे का मिरर निकाल कर सम्राट को दे दिया। सम्राट ने कहा, पागल हो गये हो, मेरे पास बड़े-बड़े दर्पण हैं। यह तुम दो पैसे का दर्पण लाये हो, क्या मेरे पास नहीं होगा? कैसे पागल हो? उस फकीर ने कहा, यह दर्पण साधारण नहीं है। इसमें अगर देखोगे तो तुम अपने को ही देख लोगे। दूसरे दर्पण में सिर्फ दिखा होगा, इसमें तुम ही दिख जाओगे। कागज में लिपटा हुआ है दर्पण, सम्राट ने कहा, मैं इसे खोलकर देखूं? फकीर ने कहा, अकेले में देखना, क्योंकि इसमें तुम दिख जाओगे—जैसे हो, जो हो।

फिर फकीर चला गया, एकान्त होते ही सम्राट ने कागज फाड़ा है। साधारण-सा दर्पण है, जिस को दर्पण कहना भी मुश्किल है। अत्यन्त दीन, दरिद्र दर्पण है, लेकिन उस दर्पण पर एक वचन लिखा हुआ है कि और सब दर्पण व्यर्थ हैं, एक ही दर्पण सार्थक है, वह वही दर्पण है जो तुम बन सकते हो। मौन हो जाओ, चुप हो जाओ, चित्त की सब तरंगें बन्द कर दो। उसी दर्पण में देख सको कि तुम कौन हो? और जो स्वयं को देख ले, वह सबको देख लेता है। एक बार झलक मिल जाये शान्त होकर जीवन की, सब मिल जाता है। लेकिन हम खोजते हैं शास्त्रों में, शास्त्रों में कभी न मिलेगा। हम खोजते हैं गुरुओं के पास, कभी न मिलेगा। कोई किसी को दे सकता नहीं। है हमारे पास, और हम खोजते हैं कहीं और, तो भटकते रहते हैं।

एक ही बात आपसे कहना चाहता हूँ, वह यह कि अज्ञान को समझें और अज्ञान को झूठे ज्ञान से ढांके मत। उधार ज्ञान से अपने अज्ञान को भुलायें मत। उधार ज्ञान को दोहरा-दोहरा कर जबर्दस्ती ज्ञान बनाने की व्यर्थ चेष्टा में मत लगें। ऐसा न कभी हुआ है, न हो सकता है। एक ही उपाय है, और जिस उपाय से सबको हुआ है, कभी भी हुआ है, कभी भी

होगा, वह उपाय है कि कैसे हम दर्पण बन जायें—जस्ट टू बी ए मिरर।

दर्पण, पता है आपको, दर्पण की खूबी क्या है? दर्पण की खूबी यह है कि उसमें कुछ भी नहीं है, वह बिल्कुल खाली है। इसीलिए तो जो भी आता है, उसमें दिख जाता है। अगर दर्पण में कुछ हो, तो फिर दिखेगा नहीं। दर्पण में कुछ भी नहीं टिकता, दर्पण में कुछ है ही नहीं। दर्पण बिल्कुल खाली है। दर्पण का मतलब है, टोटल एम्प्टिनेस, बिल्कुल खाली। कुछ है नहीं उसमें, जरा भी बाधा नहीं है। अगर जरा भी बाधा हो तो फिर दूसरी चीज पूरी नहीं दिखायी पड़ेगी। जितना कीमती दर्पण, उतना खाली। जितना सस्ता दर्पण, उतना थोड़ा भरा हुआ। बिल्कुल पूरा दर्पण हो, तो उसका मतलब यह है वहाँ कुछ भी नहीं है। सिर्फ, कैपेसिटी टू रिफलेक्ट। कुछ भी नहीं है, सिर्फ क्षमता है एक प्रतिफलन की; जो भी चीज सामने आये, वह दिख जाये।

क्या मनुष्य का मन ऐसा दर्पण बन सकता है?—बन सकता है। और ऐसे दर्पण बने मन का नाम ही ध्यान है, मेडिटेशन है। ऐसा जो दर्पण-जैसा बन गया मन है, उसका नाम ध्यान है। ऐसे मन का नाम ध्यान है। ध्यान का मतलब यह नहीं है कि राम-राम, राम-राम कर रहे हैं। इससे ध्यान का कोई सम्बन्ध नहीं है। लहर चल रही हैं, राम-राम के नाम की। इससे क्या फर्क पड़ता है कि ओम्-ओम्-ओम् कर रहे हैं, वह भी लहर चल रही है। ओम् की चल रही है, इससे क्या फर्क पड़ता है? कोई लहर रह न जाये शब्द की, कोई विचार न रह जाये। कुछ भी न रह जाये, बस खालीपन रह जाये, तो उस खालीपन में हम उसे जान लेंगे जो चारों तरफ मौजूद है।

भगवान को खोजने कहीं कोई हिमालय पर, कोई एवरेस्ट पर थोड़े ही जाना है, न किसी चाँद-तारे पर जाना है! वह है यहीं, सब जगह। सच तो यह है कि वही है, उसके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। इसलिए जो पूछता है, कहाँ खोजने जाऊँ, वह पागल है। कोई अगर यह पूछे कि कोई ऐसी जगह बताओ जहाँ भगवान न हो, तो समझना यह आदमी कुछ खोजने निकला है। लेकिन कोई कहता है कि मुझे वह जगह बताओ जहाँ भगवान है, तो समझ लो यह आदमी पागल है। क्योंकि ऐसी कोई जगह नहीं है जहाँ वह नहीं है। असल में होना-मात्र वही है। जो भी है, वही है। उसके अतिरिक्त कुछ भी और नहीं है।

ईश्वर का मतलब है—अस्तित्व, एक्जिस्टेंस, जो है। फिर कमी क्या है? हम खोज क्यों नहीं पाते हैं उसे? कमी शायद इतनी है कि हम दर्पण नहीं है, जिसमें वह झलक जाये। हम भीतर भरे हैं और वह नहीं झलक पाता। इसलिए कहीं खोजने न जायें—सिर्फ चुप बैठें, मौन बैठें, और धीरे-धीरे इस दिशा में थोड़ा प्रयोग करें कि कैसे मन, विश्वास, क्षीण होते चले जायें, क्षीण होते चले जायें, और एक दिन आ जाये जिस दिन मन में कोई विचार न हो। हम हों, वह हो, और बीच में कोई विचार न हो। बस, उसी क्षण मिलन हो जाता है।

और यह कठिन भी नहीं है बहुत। कठीन है, बहुत कठिन नहीं है। कठिन तो है ही, लेकिन बहुत कठिन नहीं है, असम्भव नहीं है। कैसे यह सम्भव होगा, एक छोटा-सा सूत्र और अपनी बात मैं पूरी कर दूंगा।

एक छोटे सूत्र को ध्यान में रख लें तो संभव हो जायेगा। आधा घण्टा चुपचाप बैठ जायें, रोज चौबीस घण्टे में। और कुछ भी न करें, बस मन को देखते रहें, सिर्फ देखते रहें—ऑबजर्वेशन, सिर्फ देखते रहें—यह हो रहा है, यह हो रहा हैं। मन में यह विचार आया, वह विचार आया—आया, गया; आया, गया। भीड़ लगी है, रास्ता चल रहा है। बस, चुपचाप देखते रहें, देखते रहें, देखते रहें। कुछ भी न करें, माला भी न करें, राम-राम न जपें, राम-राम भी न जपें, मन्त्र भी न दोहराएँ, कुछ भी न करें। बस, इस मन को देखते रहें—ये विचार चल रहे हैं, ये चल रहे हैं; यह जा रहा है, यह आ रहा है। रोकिये भी न किसी विचार को, झगड़ें न, दबायें भी न न, किसी विचार को निकालें भी न। क्योंकि किसी विचार को निकालने गये, तो फिर कभी न निकाल पायेंगे। असंभव है वह बात। दबाया किसी को तो फिर उससे कभी छुटकारा न होगा। वह छाती में दबा हुआ खड़ा ही रहेगा। लड़े किसी से कि हारे। लड़ना मत विचार से।

जो विचार से लड़ेगा, वह हारेगा—क्यों? इसलिए नहीं कि विचार बहुत मजबूत है और हम बहुत कमजोर हैं। इसलिए कि विचार है ही नहीं, छाया है। और छाया से लड़नेवाला कभी नहीं जीत सकता है। आप बड़े-से-बड़े दैत्य से भी जीत सकते हो, लेकिन किसी छाया से लड़े, तो न जीत सकेंगे। इसका यह मतलब नहीं है कि छाया बहुत मजबूत है। इसका कुल मतलब है कि छाया वस्तुतः है ही नहीं। उससे लड़े कि बेवकूफ बने। अपने

हाथ से मूढ़ बने,... और गये,... और हारे,... और मिटे।

लड़ना मत, जूझना मत, निर्णय मत करना, रोकना मत, चुप-चाप बैठ कर देखते रहना मन को। और अगर थोड़ा साहस रखा और भयभीत न हुए और भागे न, और देखते रहे, क्योंकि भय लगेगा, क्योंकि जब मन को देखने बैठेंगे तो पायेंगे, क्या मैं पागल हूं? अगर दस मिनट एकान्त में बैठ-कर मन में जो चलता हो उसको लिख डालें, ईमानदारी से, तो पति अपनी पत्नी को न बता सकेगा, पत्नी अपने पति को न बता सकेगी, मित्र अपने मित्र को न बता सकेगा कि यह मेरे दिमाग में चलता है। और अगर बताया तो घरभर के लोग चौंककर देखेंगे। वे कहेंगे, जल्दी अस्पताल ले चलो। यह बातें तुम्हारे दिमाग में चलती हैं? हालांकि जो कहेगा कि तुम मालूम पड़ते हो विक्षिप्त, वह भी दस मिनट बैठेगा तो वही उसको भी पता चलेगा। और जिस डॉक्टर के पास वह ले जा रहे हैं, अगर वह भी दस मिनट बैठेगा तो यही उसको भी पता चलेगा।

भयभीत न हुए, अगर भागे न, डरे न, चुपचाप देखते रहे, तो मन बिल्कुल पागल-जैसा मालूम पड़ेगा। पागल में और हममें कोई बुनियादी फर्क नहीं है—सिर्फ डिग्री का फर्क होता है। कोई ६८ डिग्री का पागल है, कोई सौ डिग्री का, कोई १०२ की भाप पर आगे चला गया है। इसलिए तो देर नहीं लगती है। एक आदमी का दीवाला निकला, कल तक वह ठीक था, अभी दिवाला निकला और पागल हो गया! एक आदमी ठीक था, उसकी पत्नी मर गयी, वह पागल हो गया! एक आदमी ठीक था। कुछ गड़बड़ हुई, पागल हो गया! डिग्री का फर्क है। एक डिग्री इधर या, उधर एक माप बढ़ गया, उस तरफ हो गया।

पागलखाने में जो हैं, और वे पागलखानों के भीतर जो नहीं हैं, उनके बीच दीवाल का ही फासला है। ज्यादा फासला नहीं है। और कोई भी आदमी फौरन दीवाल के भीतर हो सकता है। हम सब उताप के करीब ही रहते हैं, लेकिन संभाले-संभाले चलते हैं।

जब बैठकर देखेंगे तो लगेगा एकदम मेडनेस, पागलपन है। तब साहस रखना और देखते चले जाना, मत डरना, मत भागना। तो धीरे-धीरे पागलपन क्षीण हो जायेगा। सिर्फ देखना, कुछ भी मत करना। धीरे-धीरे भीतर एक नयी चेतना जगने लगती है—देखनेवाले की, द्रष्टा की, साक्षी की और

विचार खोने लगते हैं। एक दिन आ जाता है, निश्चित आ जाता है, जब विचार धीरे-धीरे समाप्त हो जाता है। सिर्फ हम रह जाते हैं, वहाँ कोई विचार नहीं रहता। सिर्फ चेतना रह जाती है--एक फ्लेम की तरह, एक ज्योति की तरह। जरा भी कंपती नहीं! जरा भी हिलती नहीं। बस, उसी अकंप, अडोल, अचल चेतना में वह दर्पण बन जाता है, जिसमें प्रभु के दर्शन होते हैं।

परमात्मा करे, इस दिशा में ख्याल आ जाये।

मेरी बातों को इतने प्रेम और शान्ति से सुना, उससे बहुत अनुग्रहीत हूँ, और अन्त में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूँ, मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

श्रीनगर, ३ अक्तूबर, १९६९, सायं

४. अन्धा खेल

बहुत-सी बातें समझने में मुश्किल होती है। पहली बात तो यह समझने में मुश्किल पड़ती है कि कहीं जाना नहीं है, यह समझना मुश्किल हो जाता है। हमारे चित्त की पूरी-की-पूरी व्यवस्था ऐसी है कि वह कहता है कि कहीं चलो, यहाँ कुछ भी नही है। पूरा चित्त ही इस तनाव से बना है कि कहीं चलो--वहाँ, कहीं दूर मंजिल है। चित्त का आधार ही यही है कि मंजिल दूर हो, नहीं तो चित्त गया। क्योंकि मंजिल दूर है तो पाने की कोशिश करनी पड़ती है, सोचना पड़ता है, योजना बनानी पड़ती है, ढंग खोजने पड़ते हैं। और मंजिल दूर है तो आज तो नहीं मिल जाती, कल मिलेगी। इसलिए आज से कल के प्रति तनाव जारी रखना पड़ता है।

मन जीता है तनाव में और सब तनाव गहरे में कहीं पहुँचने का तनाव है--चाहे वह धन हो, चाहे वह यश हो, चाहे मोक्ष। मन मरा उसी वक्त, जिस वक्त आपने कहा, 'कहीं नहीं जाना है'--'जाना ही नहीं है कहीं'। तो मन के अस्तित्व की सारी आधारशिला हट गयी। और जब तक हम कहीं जाने में लगे हैं, तब तक एक बात पक्की है कि अपने को जानने में नहीं लग सकते हैं। क्योंकि दूर ले जानेवाला मन पास ही नहीं आने देता। और वह दूर ले जानेवाला मन इतना कुशल है कि जैसे एक आदमी यहाँ सोया रात और सपने में देखा कि वह कलकत्ता चला गया। तो उसे किसी रास्ते से लौट आना पड़ेगा कलकत्ते से यहाँ वापस? वह गया ही नहीं है; क्योंकि सच बात यह है कि हम जहाँ हैं, वहाँ से वस्तुतः जा ही कैसे सकते हैं! जो हम हैं, उससे अन्यथा हम हो कैसे सकते हैं? हम वही हैं—सिर्फ हमारा मन चल गया है, सिर्फ कामना चली गयी है। मन भी क्या जायेगा, कामना चली गयी है, डिज़ायर चली गई है दूर! हम वहीं खड़े हैं।

सवाल कुल इतना है कि जहाँ हम खड़े हैं वहीं हम अपनी सारी डिज़ायर को, सारे विचार को, सारी कामना को वहीं रोक लें, जहाँ हम खड़े

हैं। तो जो हम हैं, वह हमें पता चल जाय।

तो, एक तो यह समझ में नहीं आता साधारणतः कि जीवन का सारा अनुभव यह कहता है कि मंजिल दूर है। और आत्मिक अनुभव की बात बिल्कुल उल्टी है। मंजिल दूर बिल्कुल नहीं है, बिल्कुल ही पास है। तो जो मंजिल दूर है उसको जोड़ने के लिए रास्ता चाहिए; विधि चाहिए, मैथड चाहिए, टेकनीक चाहिए और समय चाहिए। आज तो हो नहीं सकता वह, अभी तो हो नहीं सकता, कभी होगा। तो गुरु चाहिए, फिर बतानेवाला गाइड चाहिए——क्योंकि मंजिल आगे है, भविष्य अन्धकारपूर्ण है, हम वहाँ गये नहीं हैं कभी तो कोई चाहिए जो बताये।

भविष्य में मंजिल हो तो फिर गुरु अनिवार्य है, शास्त्र अनिवार्य है; गाइड होगा, व्यवस्था होगी, विधि होगी, टेकनीक होगी। लेकिन मजे की बात है, मंजिल यहीं है——अभी, इसी वक्त। कहीं जाना नहीं है, सिर्फ ठहर जाना है। और ठहर वह जायेगा, जो खोज बन्द कर दे। क्योंकि खोजनेवाला मन ठहर कैसे सकता है——वह खोज रहा है, खोज रहा है!

नहीं, खोज नहीं रहे हैं आप; नो सीकिंग की एक हालत है। कुछ भी नहीं खोजना है। तो इस क्षण में होगा क्या? इस क्षण में आप कहीं भी नहीं होंगे तो चेतना वहीं होगी, जहाँ है। और तब उद्घाटन, एक्सप्लोजन होगा।

सभी विधियाँ इस बात को मानकर चलती हैं कि आप कहीं चले गये हैं। न, कहीं आपको जाना नहीं है। तो विधिमात्र की भूल है; वह हमारी जानेवाली मन में लगी हुई है। और जब विधि सीखेंगे तो फिर गुरु चाहिए, फिर सब आयेगा पीछे से। सारी गुरुडम आयेगी, आश्रम आयेगा, सम्प्रदाय आयेगा, अनुयायी आयेंगे, वह सब आयेगा।

दूसरी मजे की बात है, जो ख्याल में नहीं आती। और वह यह है कि अगर किसी क्षण में कोई व्यक्ति कुछ भी नहीं खोज रहा और कुछ भी नहीं कर रहा, तो भी कहीं तो होगा। न खोजता हो, न करता हो, न सोचता हो, तो भी कहीं होगा। कहाँ होगा? अपने से अन्यथा होने के सब दरवाजे बंद हैं। न तो वह कुछ कर रहा है कि जिसमें वह उलझ जाये; न मन कुछ सोच रहा है, जिसमें फंस जाये; न मन कुछ सोच रहा है, जिसमें वह चला जाये। न खोज रहा है, न सोच रहा है, न कर रहा है——नॉन डुईंग, नॉन सीकिंग, नॉन थिंकिंग——होगा कहाँ? ...जायेगा कहाँ? मिट तो नहीं जायेगा;

होगा तो फिर भी। तो फिर वहीं होगा, जहाँ है। कोई उपाय न रहा उसका, बाहर जाने के दरवाजे गये। ये सब दरवाजे बाहर ले जानेवाले हैं। तब किसी स्थिति में, जिस स्थिति में होगा, वह उसका स्वभाव होगा, स्वास्थ्य होगा।

उसका उद्घाटन करना है और स्वभाव के उद्घाटनके लिए सब मेथड बाधाएँ हैं; और सब रास्ते बाधाएँ हैं, क्योंकि वे दूर ले जाते हैं। कहीं खोज पर ले जाते हैं। यह एकदम से ख्याल में आना अति कठिन मालूम होता है। एक बार ख्याल में आ जाये तो इससे ज्यादा सरल कुछ भी नहीं है। लेकिन हमारा जो माइन्ड है, उसकी पूरी-की-पूरी व्यवस्था इसी भाषा में सोचने की है कि 'कहाँ जाना है?' 'क्या करना है?' 'कैसे जाना है?' और जब कोई रास्ता बताता है, तो हमारी समझ में पड़ता है कि ठीक बात कही है——रास्ता होगा, टेकनीक होगी, पहुँचना होगा।

सत्यानन्द ने बहुत बढ़िया बात कही थी। उन्होंने कहा कि चाहे विधि से और चाहे अविधि से——मैथड से, चाहे नो मैथड से, कहीं चलें, वही है——हमको पाना वही है। अब इसे अगर गौर से देखेंगे तो बहुत मजेदार है यह वक्तव्य। सत्यानन्द जी ने जो कहा, बहुत महत्त्वपूर्ण है। इसका मतलब क्या होता है? अगर आप यह कहते हैं कि चाहे विधि से और चाहे 'न-विधि'से, मंजिल तो एक ही है। तो फिर आप विधि खोज ही लेंगे, फिर विधि से आप नहीं बच सकते। क्योंकि विधि जुड़ी है मंजिल के साथ। फिर अविधि की बात ही नहीं सोच सकते। और मैं यह कह रहा हूँ...इसलिए वह कह सकते हैं कि जो मैंने कहा, वहीं उन्होंने कहा। यह मैं नहीं कह सकता कि जो मैंने कहा, वही उन्होंने कहा। वह तो बिल्कुल ही उल्टा है, जो उन्होंने कहा है। मैं नहीं कह सकता यह बात, क्योंकि मैं तो आप ही से कह रहा हूँ। मैं यह नहीं कह रहा हूँ, मैथड से भी पहुँच जाता है, नो मैथड से भी पहुँचा जाता है। मैं यह कह रहा हूँ, मैथडवाला पहुँच ही नहीं सकता, क्योंकि मैथड हमेशा भविष्य की तरफ इंगित करता है——मंजिल की तरफ। नो मैथड अपनी तरफ इंगित करता है, क्योंकि नो मैथड में मंजिल का कोई उपाय नहीं है। जाइयेगा कहाँ, रास्ता नहीं है कोई!

रास्ता तो कहीं ले जाता है। वह हमेशा के लिए ले जाता है, और बहुत कठिनाई यह हो गयी है आत्मिक जीवन की कि यहाँ हमें कहीं जाना

नहीं है। जहाँ हम हैं, वहीं एक क्षण को हमें हो जाना है। तो किसी भी रास्ते पर हम गये, तो हम भटके। तो इधर तो लोग कहते हैं, रास्ता पहुँचाता है। मैं कहता हूँ, रास्ता मात्र भटकाता है। और सब मामले में बिल्कुल ठीक है यह बात कि अगर आपको स्टेशन जाना है तो रास्ते से आयेंगे और बम्बई जाना है तो रास्ते से जायेंगे। एक मामले भर में यह बात गलत है। अगर अपने पर आना है, तो रास्ते से आप नहीं आ पायेंगे। क्योंकि रास्ते पर चलना ही दूर निकलने की शुरूआत हो गयी।

तब सवाल उठता है, करें क्या? मेरा कहना यह है कि हम इस स्थिति को समझें ठीक से। यह पूरी सिचुएशन हमारी समझ में आ जाये कि ऐसा उलझाव है; अगर रास्ता पकड़े तो भटक गये।

असल में मजा यह है, रास्ता मात्र बाहर जाने का है, क्योंकि अन्दर तो हम हैं। जो कठिनाई है, ऐसा तो है नहीं कि हम बाहर हो रहे हैं और अन्दर आना है। अगर इसको ठीक-से हम समझें, तो ऐसा तो हो नहीं गया है कि बाहर हैं, और हमें अन्दर आना है। हम तो अन्दर हैं ही; इसमें कोई उपाय ही नहीं है बात करने का। इसमें कोई उपाय होता, तो फिर उल्टा उपाय भी होता। यानी आप क्या करके बाहर हो सकते हैं, मुझे बताइये। आप बाहर हो कैसे सकते हैं? आप जहाँ भी जायेंगे, भीतर ही जायेंगे। बाहर जाने का तो कोई उपाय नहीं है। लेकिन बाहर की कल्पना भर हो सकती है। आप जा नहीं सकते बाहर। आप यहाँ बैठे हैं; आप कलकत्ता नहीं जा सकते। लेकिन कलकत्ता जाने का सपना देख सकते हैं। इसमें कोई कठिनाई नहीं है। आँख बन्द करके आप कलकत्ते जा भी सकते हैं—इस अर्थ में कि विचार चला जाये। आप लेकिन फिर भी वहीं होंगे। आप होंगे यहीं; आप होंगे अपने भीतर।

तो समझने की बात यह है कि हम भीतर तो हैं हीं, इसलिए भीतर जाने का सवाल नहीं है। बाहर किन-किन रास्तों से चले गये हैं, उन रास्तों को छोड़ देने का सवाल है। जो प्रॉबलम है असल में, अगर मैं इसी कमरे में बैठा होऊँ तो मुझे इसी कमरे में आना नहीं है। सवाल सिर्फ यह है कि मुझे यह कमरा मिट गया है, मुझे कलकत्ता दिखायी पड़ रहा है। तो विचार की किसी यात्रा से मैं कलकत्ता पहुँच गया हूँ; हूँ इसी कमरे में, लेकिन एक अर्थ में कलकत्ते में हूँ; कमरा मुझे दिखायी नहीं पड़ रहा है। मैं

कलकत्ते के स्टेशन पर खड़ा हुआ हूँ, वह स्टेशन मुझे दिखायी पड़ रही है। लेकिन मेरे सामने सवाल है कि मैं अपने घर कैसे वापस लौट जाऊँ। अगर सच में मैं कलकत्ता पहुँच गया होता, तो कोई ट्रेन पकड़नी पड़ती, कोई कार पकड़नी पड़ती, कोई रास्ता पकड़ना पड़ता। अगर सच ही कलकत्ता पहुँच गया होता तो इस कमरे तक आने के लिए कोई रास्ता पकड़ना ही होता। लेकिन, चूँकि मैं सच में पहुँचा ही नहीं हूँ, सिर्फ ड्रीम कर रहा हूँ, इसलिए आने के लिए कोई रास्ता नहीं है। और अगर कोई रास्ता पकड़ा तो और भटकानेवाला होगा, क्योंकि ड्रीम में पड़कर रास्तों का क्या मतलब हो सकता है?

सिर्फ सवाल इतना है कि मैं इस तथ्य के प्रति जाग जाऊँ कि मैं तो भीतर हूँ, सिर्फ मेरा विचार बाहर चला गया है, और मैं कभी अपने भीतर से बाहर नहीं गया। तो फिर अब सवाल क्या है? अब सवाल यह रह गया है कि विचार न जाये।

और विचार चला क्यों गया है?

...मैंने भेजा है, इसलिए चला गया है। और मैंने भेजा इसलिए कि कलकते में कुछ मिलने को है, जो मुझे यहाँ नहीं मिल रहा है। इसलिए चला गया। कोई आकाँक्षा है, जो वहाँ तृप्त हो रही है--यहाँ तृप्त नहीं होती, इसलिए चला गया।

विचार चला गया है वासना के वाहन पर बैठकर, और हम वहीं हैं। यह बेसिक ट्रुथ अगर ख्याल में आ जाये कि हम वहीं हैं, वासना के वाहन पर बैठकर विचार चला गया है।

...समझ लें, एक आदमी यहाँ बैठा है, कलकत्ते में विचार है। अब वह कहता है, मैं कैसे घर लौटूँ? उसको हम कहेंगे, तुम हवाई जहाज पकड़ो और लौट जाओ? वह कहाँ जायेगा? कहाँ से हवाई जहाज पकड़ेगा? वह जितना कलकता घूमता है, उतना ही कलकत्ता में पकड़ा गया है। कलकत्ते में वह है नहीं आदमी। जितना झूठा हवाई जहाज होगा, उतनी झूठी टिकट होगी; उतना ही झूठा हवाई जहाज का पायलट होगा। क्योंकि कलकत्ता में होना चूँकि बुनियादि रूप से झूठा है, इसलिए अब कलकते जो भी किया जायेगा, वह सच तो हो नहीं सकता; वह झूठ ही होगा। और झूठ लौटानेवाला नहीं होता है।

यानी सवाल सिर्फ इतना है, हमें यह जानना है--"हमें आना नहीं है अपने भीतर, हम भीतर हैं; आना हमें है नहीं, गये हम है नहीं, सिर्फ विचार हमारा बाहर चला गया है।" विचार न हो जाये, हम फौरन पायेंगे कि हम भीतर हैं। जैसे कि आप बैठे हैं, दिवा स्वप्न में खो गये हैं, कलकत्ते में, मैंने आकर आपको हिला दिया तो आप कलकत्ते में थोड़े जगेंगे, आप जगेंगे यहाँ और कलकत्ते से लौटने के लिए कोई वाहन काम नहीं आयेगा। कोई जरूरत नहीं है वाहन की।

यह जो बुनियादी तथ्य है कि हम कभी अपने से बाहर गये नहीं। हम जिसके बाहर जा सकते हैं, वह हमारा स्वरूप नहीं है। जो हमारा बुनियादी स्वरूप है, उससे हम बाहर जा कैसे सकते हैं? लेकिन हम गये हुए मालूम पड़ते हैं! एक तो भूल यह हो गयी है कि हम गये हुए मालूम पड़ते है; एक झूठ यह हो गया है। अब दूसरा झूठ इसमें यह पाल रहे हैं कि हम लौटें कैसे? तो मैथड, रिलीजन, पूजा, रिचुअल--ये सब हम पकड़े हुए हैं।...कि लौटने के रास्ते हम पकड़ रहे हैं!

अब यह बड़े मजे की बात है कि जिस आदमी का जाना ही भूल भरा है, उसके लौटने की क्या बात है? उस आदमी को सिर्फ इतनी बात के प्रति सजग करना जरूरी है कि तुम कहीं गये ही नहीं हो। अनन्त काल से तुम वहीं हो, लेकिन अनन्त काल से तुम्हारा चित्त भटक रहा है, कल्पना भटक रही है, ड्रीम में तुम खो रहे हो। तो कृपा करके थोड़ी देर ड्रीम में मत होओ, थोड़ा देर के लिए सोचो मत, थोड़ी देर के लिए वहीं हो जाओ, जहाँ हो, तो तुम पा लोगे, वह जो पाया ही हुआ है।

इसलिए सवाल मैथड का नहीं है, नो मैथड का है; क्योंकि मैथड ले जानेवाला है, रास्ता ले जानेवाला है। इसलिए पाने का सवाल नहीं है, नो पाथ का सवाल है। गुरु कहीं पहुँचानेवाला है; हमें कहीं पहुँचना नहीं है। हम वहीं हैं, कौन गुरु हमको वहाँ पहुँचा सकता है? इसलिए गुरु की कोई जरूरत नहीं है, इसमें गुरु का कोई सवाल नहीं है। गुरु तो इसी ड्रीम-लैंड का हिस्सा है, जिसमें हम भटकने को सच मानते हैं। फिर हम ले जानेवाले को भी सच मानते हैं। फिर उसके चरण को छूते हैं। फिर उसको गुरु मानते हैं। और वह जो हमको ले जा रहा है, वह कहाँ ले जायेगा, क्योंकि कलकत्ते में हम है नहीं।

मेरी जो सारी बात है, वह कुल इतनी है कि बीइंग हमारा सदा वहीं है, जहाँ है, और चित्त हमारा सदा वहाँ है, जहाँ हम नहीं हैं। ऐसा चित्त में और हमारे बीच में फासला पड़ गया है। यह फासला बिल्कुल काल्पनिक है। यह वास्तविक डिसटेन्स अगर होता, तो बिल्कुल ही रास्ते की जरूरत पड़ जाती। लेकिन फासला बिल्कुल झूठा है।

इस फासले को मिटाने के लिए कुछ और करने की जरूरत नहीं है। यह जो चित्त के जाने की आदत है, इसको समझने की जरूरत है कि यह जाता क्यों है बाहर।... क्यों जाता है?

जाता है इसलिए कि वहाँ कुछ मिल जायेगा। फिर एक गुरु आता है, वह कहता है, अगर मोक्ष पाना है तो,...वह एक नयी डिज़ायर पैदा करवा रहा है। वह यह कह रहा है कि मोक्ष वहाँ है। संसार की चीजें तो यहीं हैं जमीन पर; वह मोक्ष ज़मीन पर नहीं है। वह सिद्ध-शिला बहुत दूर है। वहाँ मोक्ष है, वह तुम्हें पाना है। वहाँ शान्ति है, वहाँ आनन्द है, वहाँ परम अमृत बरस रहा है। आपका लोभ जगा, ग्रीड जगी--आपके भीतर लोभ जगा कि ऐसी शान्ति मुझे भी चाहिए, ऐसा आनन्द मुझे भी चाहिए, यह मोक्ष मुझे भी चाहिए।

और मजा यह है कि लोभ ही आपको बाहर ले जाने का माध्यम था; और आपने कहा, मुझे मार्ग भी चाहिए, रास्ता बताओ। और मोक्ष बिल्कुल अन्धेरे की बात है। इसलिए उसमें सब तरह के गुरु चल सकते हैं। उसमें किसी गुरु को कोई नुकसान नहीं पहुँचा सकता है। क्योंकि इसमें जाने को कहीं हो तो उसमें आपका गुरु जीत जाता। क्योंकि रियलिटी से सबन्धित है। अब यह तो मोक्ष की आपकी आकाँक्षा जग गयी है, लोभ जग गया है, और शान्ति चाहिए, आनन्द चाहिए, लोभ जग गया तो आप चले और लम्बी यात्रा पर निकले।

तो इस जमीन की यात्राएँ तो फिर भी वास्तविक हैं, यह एक ऐसी यात्रा पर आप जा रहे हैं; जहाँ बिल्कुल अन्धा खेल है--जहाँ गुरु कहेगा,...

इसलिए गुरु कहता है ओबिडियन्स चाहिए; शक नहीं चाहिए। डाऊट है तो आपको गुरु कहीं ले जा नहीं सकता एक मिनट। इसलिए पहले इसका इन्तजाम करता है कि सन्देह किया कि भटके, सन्देह किया कि गये। आज्ञा पूरी; गुरु जो कहे वह परम सत्य है। तुम जानते नहीं हो, हम जानते

हैं। तो हम जो बताते, तुम उस पर शक कैसे कर सकते हो? तुम जानते नहीं हो। तुम जान लोगे तो ठीक है। हमारे पीछे आओ। अब यह एक अन्धेरा रास्ता शुरू हुआ, क्योंकि जहाँ हम गये नहीं थे, वहाँ से यह आदमी उसकी लौटाने का रास्ता बताने लगा।

एक बात भर अगर ठीक-से ख्याल में आ जाये; तो सवाल सिर्फ इतना है कि हमने जो विचार की किरणें बाहर भेज दी हैं, वह हमारी वापस लौट जायेंगी। और वापस लौटने के लिए भी कुछ होना नहीं है, क्योंकि लौटेंगे कैसे वापस? क्योंकि सच में लौटने की बात नहीं है। सिर्फ कल्पना है कि हम चले गये हैं। और कल्पना इसलिए चली गयी है कि वह लोभ पर सवार हो गयी है। और फिर लोभ पर सवार हो गया है—मोक्ष, स्वर्ग, मुक्ति। फिर लोभ पर सवार हो गये हैं हम। और इसी लोभ का शोषण कर रहा है गुरु।

गुरु जो है, वह लोभ का शोषण कर रहा है। इसलिए जिनकी धन की तृप्ति हो जायेगी, , वह फिर धर्म के लोभ में पड़ जायेंगे। वे कहेंगे--यह तो मिल गया, अब ठीक है, अब मोक्ष भी चाहिए। वह लोभ का शोषण कर रहा है गुरु। वह कह रहा है, हम तुम्हें दिलवा देंगे जो चीज तुम्हें चाहिए। इसलिए मैं कहता हूँ, सब गुरु भ्रान्त हैं, खतरनाक हैं। ऐसा नहीं कि कोई अच्छा गुरु होता है--गुरु मात्र गड़बड़ है।

और दूसरी बात : बहुत-सी बातें एकदम से ख्याल में न आने से बड़ी मुश्किल हो जाती है। अब जैसे कि कोई भी एक टेकनीक है, कोई भी टेकनीक हैं; कोई भी टेकनीक है, करेंगे क्या! टेकनीक है, मन कुछ करेगा। कुछ भी करें--अगर राम-राम, राम-राम, कि इसको जपो। अल्लाहवाला है, तो अल्लाह से; जीससवाला है, तो जीसस से। फिर कोई फिक्र नहीं करते। जो तुम्हारा नाम है, वही जपो। उसको जोर से जपते रहो, जपते रहो। तो इस पूरे जपने की प्रक्रिया में किसी भी एक शब्द पर अगर आदमी का मन ठहरा लिया जाये तो मुछित हो जाता है।

हिप्नोसिस की तरकीब है कुल इतनी—जपो। तो इससे आप अपने पर नहीं लौटते, और मूर्छा में चले जाते हैं। यानी स्वप्न से निद्रा में चले जाते हैं, स्वप्न से जागरण में नहीं आते। क्योंकि कोई भी पुनरुक्ति डल करती है दिमाग को। और इसलिए हम सबका दिमाग धीरे-धीरे डल होता जाता

है, क्योंकि हमें चौबीस घन्टे पुनरुक्ति करनी पड़ती है। रोज वही, रोज वही, रोज वही और जो ताजगी है मस्तिष्क की, वह खत्म होने लगती है --क्योंकि सब रूटीन हो जाता है।

इसलिए नये का हमें इतना आनन्द होता है। आप अगर अहमदाबाद से ऊब गये हैं, तो पहलगाम अच्छा लगता है। उसके अच्छा लगने का कारण पहलगाम कम है, अहमदाबाद ने वमन पैदा कर दी है। रिपीटीशन, रोज-रोज वही-वही है, उससे ऊब गये हैं। लेकिन वहाँ जा रहा है, उसे पहलगाम में कोई आनन्द नहीं आ रहा है। वह सोच रहा है कि कब अहमदाबाद देख लें, बम्बई देख लें। और जिस दिन देखेगा, इतना आनन्दित होगा, जितना आप हुए। क्योंकि उसकी यह रूटीन हो गयी थी; उसको यह डल हो गया था; इसमें कोई देखने की बात न थी। सब वही था। रोज वही सूरज, रोज वही चाँद, रोज वही पहाड़, रोज वही दरख्त। आपने भी पहले दिन जसे दरख्त देखे होंगे, आज नहीं देखे हैं। वह बात गयी। वह रिपीटिशन हो गया। माइन्ड डल हो जाता है रिपीटिशन से। ऐसा भी हो सकता है कि इस पहाड़ पर रहनेवाला आदमी दरख्त और पहाड़ को देखता ही न हो। यह कठिन बात नहीं है। आप भी रह जायें चार-छः महीने, तो पहाड़ नहीं दिखायी पड़ेगा और न पौधे दिखायी पड़ेंगे, माइन्ड डल हो जायेगा, रिपीट हो गयी बात।

नये के प्रति माइन्ड जगता है और पुराने के प्रति डल हो जाता है। फिर हम जो भी करते हैं, वह सभी तो रिपीटीशन हो जाता है। सभी रिपीटीशन हो जाता है। कुछ भी करेंगे तो रिपीट करेंगे। रिपीटीशन में वह सब डलनेस आ जायेगी। और मजे की बात यह है कि अगर हम कुछ न करें,...तो चूँकि हम कुछ करते नहीं, इसलिए रिपीट करने का प्रश्न ही नहीं उठता है। वह अन-रिपीटेड,...क्योंकि हम कुछ करते नहीं हैं, जिसको कि हम रिपीट कर सकें। कुछ करते तो रिपीट हो सकता था, हम कुछ करते नहीं। सिर्फ होते हैं, तो एक रिजर्वायर हो जाता है माइण्ड का। कहीं नहीं जा रहा है बाहर। जैसे कोई झरना कहीं नहीं जा रहा है—ठहर गया! चारों तरफ बाँध है। झरना एक झील बन गया है। कहीं जा नहीं रहा है। कहीं जाने की कोई बात नहीं है। शान्त झील है, एक लहर भी नहीं है। तो सारी शक्ति, सारी ताजगी, सारा युवापन उस स्थिति में पैदा

हो जायेगा। वह युवापन, वह शक्ति, वह डायनामिक फोर्स क्रिएट करेगी बहुत कुछ। लेकिन तब आप आकुपाइड नहीं होंगे। वह क्रिएट करेगी। वह ऑटोमेटिक है, जैसे वृक्ष से फूल आ रहा है, ऐसे आपसे चीजें आयेंगी। लेकिन आप फिर उनको कर नहीं रहे हैं, वह हो रही हैं। और जब हो रही हैं, तब आपके मन का बोझ गया। तो आपके मन को कोई बोझ नहीं है, कोई भार नहीं है। ऐसी स्थिति में जो अनुभव होगा, तो वह अनुभव मुक्ति का है, निर्भार होने का।

लेकिन चाहें तो इस तरह की शान्ति के झूठे अनुभव पैदा कर सकते हैं। और मन की सबसे बड़ी ताकत यह है कि वह झूठे अनुभव प्रोजेक्ट कर सकता है; कोई भी अनुभव वह चाहे तो प्रोजेक्ट कर सकता है।

केदारनाथ हिमालय में थे कोई तीस वर्ष तक। और तीस वर्ष में उनको पक्का अनुभव हो गया कि भगवान के दर्शन हो गये हैं। भगवान बहुत दिखायी पड़ने लगे; बातचीत होने लगी; दर्शन हो गये। शक का कोई उपाय भी नहीं था। जब सामने ही भगवान दिखते हैं, तब और क्या संदेह करना है! बात होती है, चीत होती है--और ककेले थे। फिर वहाँ से लौटे। लौटकर वह नीचे आकर रुके एक जगह। क्योंकि जो भगवान उन्हें दिखते थे, उनके पड़ोसी को उतने ही दिखते थे। तो उन्हें एक शक पकड़ा कि कहीं यह मेरा इलूजन तो नहीं है? क्योंकि जो मैं देख रहा हूँ तीस साल से निरन्तर भूखे, प्यासे--इसी-इसी की धारणा करने से कहीं दिखायी तो नहीं पड़ने लगा? तो उन्होंने कहा कि वह जो अभ्यास करता रहा हूँ, उसे छोड़ूँ कुछ दिन के लिए और फिर भी अगर ये दिखायी पड़ते रहें, तो...तो समझूँगा अभ्यासजन्य नहीं है, सच में हैं। क्योंकि अभ्यास गया तो भगवान गया। वह एक अभ्यासजन्य है।

एक सूफी फकीर को मेरे पास लाया गया। तो उन्हें सबमें भगवान दिखायी पड़ते थे--पौधे में, पत्थर में--सबमें भगवान दिखायी पड़ते थे। चलता भी रास्ते पर, सब तरफ भगवान को ही देखता हुआ। बड़ा आनन्दित था। मेरे पास कुछ मुसलमान लेकर आये। उन्होंने कहा, बहुत अद्भुत फकीर है। सब तरफ भगवान-ही-भगवान, कण-कण में वही दिखायी पड़ता है।

मैंने उनको कहा कि यह आपको अचानक दिखायी पड़े या आपने कोई

इन्तजाम और योजना की थी।

उन्होंने कहा, अचानक तो कुछ भी नहीं हो सकता। और अचानक का भरोसा भी नहीं किया जा सकता। तो व्यवस्था की, साधना की, एक-एक चीज में भगवान देखना शुरू किया। फूल दिखे तो मैं कहूँ, भगवान है; लेकिन यह तीस साल पहले की बात है। फिर निरन्तर अभ्यास करते-करते दिखायी पड़ने लगा। अब तो भगवान मुझे सब जगह दिखायी पड़ता है!

मैंने उससे कहा, आप मेरे पास कुछ दिन रुक जायें और अभ्यास बन्द कर दें।

उन्होंने कहा, अभ्यास मैं कैसे बन्द कर सकता हूँ!

मैंने कहा, अब भी आप अभ्यास बन्द नहीं कर सकते? जब कि भगवान दिखायी पड़ने लगा सब तरफ! तो अब भी आपके अभ्यास पर निर्भर है आपका दिखायी पड़ना तो वह अभी भी दिखायी नहीं पड़ा है!

उन्होंने कहा, नहीं दिखायी पड़ने लगा है।

तो मैंने कहा, तीन दिन तक रुक जायें। तो वे तीन दिन मेरे पास रुक गये। तब दूसरे दिन रात कोई दोब जे रात उन्होंने रोना शुरू किया। तो मैं उठकर गया। मैंने कहा, क्या हुआ?

वे बहुत चिल्लाने लगे कि मेरा सब बर्बाद कर दिया, सब मेरा नष्ट हो गया। और मैं कैसे आदमी के पास आ गया, किस कर्मों के फल से आपके पास आ गया? मेरा तो सब खो गया। कोई डेढ़ दिन अभ्यास नहीं किया तो मुझे कुछ दिखायी नहीं पड़ता है। फूल फूल दिखायी पड़ता है, पत्ता पत्ता दिखायी पड़ता है, मेरा सब अनुभव नष्ट हो गया।

मैंने उनको कहा, जो अनुभव तीस साल साधने से दिखाये और डेढ़ दिन न साधने से खो जाये, उस अनुभव का मतलब समझते हैं? वह आपका प्रोजेक्शन है। जिसको कॉन्सेटेन्टली प्रोजेक्ट करते रहो, तो ही खड़ा रह सकता है, नहीं तो खड़ा नहीं रह सकता है। आपने, जैसे कि हम फिल्म प्रोजेक्ट करते हैं पर्दे पर, तो पर्दे पर तो कुछ है नहीं, लेकिन हम प्रोजेक्ट कर रहे हों तो है। और एक सैकेंड को प्रोजेक्शन को बन्द किया तो वहाँ फिल्म नदारद हो गयी, वहाँ पर्दा खाली हो गया। जैसे पर्दे पर हम कुछ चीजें देख सकते हैं, वैसे ही हम मन के पर्दे पर प्रोजेक्ट कर सकते हैं। लेकिन जब तक वह जारी रहेगा, तब तक वह दिखायी पड़ती रहेगी। और मेरा कहना

यह है कि हमें वह दिखायी पड़ना चाहिये, जो हमारे अभ्यास पर निर्भर न हो।

इसलिए मैं सिस्टम का विरोधी हूँ, क्योंकि सिस्टम हमारी होगी, टेकनीक हमारी होगी। महेश जी ने जो कहा, वह ठीक कहा कि यह ज्यादा सेफर है; सुरक्षित है, व्यवस्थित है, सब गणित का हिसाब है। पकड़ोगे तो ऐसा होगा। और वह बिल्कुल ठीक कह रहे हैं कि ऐसा करोगे तो ऐसा होगा। लेकिन वह जो होगा, वह इस करने पर निर्भर है, वह बाई प्रोडक्ट है। वह ऐसा कर रहे हैं, इसीलिए हो रहा है।

यानी यह ऐसा है कि जैसे मैंने शराब पी और मुझे बहुत बड़े फूल दिखायी पड़ने लगे, और मैंने आपसे कहा कि आप भी शराब पियो तो आपको भी बड़े-बड़े फूल दिखायी पड़ेंगे, अगर न दिखायी पड़ें तो मुझसे आप कहें। आपने भी शराब पी है और आपको भी बड़े फूल दिखायी पड़े। और आपने कहा कि बिल्कुल ठीक कहते थे; फूल बड़े दिखायी पड़ते थे, फूल बड़े हैं। शराब ने अगर फूल बड़े दिखा दिये तो फूल बड़े नहीं होते, शराब सिर्फ आपकी स्टेट्स ऑफ माइन्ड को हिप्नोटिक कर देती है, कुछ और नहीं होता।

सवाल यह नहीं है कि हम क्या देख लें, सवाल यह है कि 'क्या है?' यह सवाल नहीं है कि हम क्या रियलाइज कर लें, सवाल यह है कि 'व्हाट इज'? है क्या असल में? हमें कुछ भी नहीं रियलाइज करना है, हमें कुछ प्रोजेक्ट नहीं करना है। हम कोई पक्का कर के नहीं जाते हैं कि हमको यह देखना है, यह अनुभव करना है, यह प्रतीति करनी है। पक्का करके जायेंगे तो सब हो जायेगा, क्योंकि माइण्ड का जाल इतना अद्भुत है, खेल इतना अद्भुत है कि माइण्ड सब चीजें दिखला देता है जो आप देखना चाहें। इसमें कोई कठिनाई नहीं है।

वे जो दो-तीन महिलाएँ कह रही थीं कि हमको तो हो रहा है, वह ठीक कह रही थीं। वह समझ ही नहीं सकते; समझ इसलिए नहीं सकते, क्योंकि डर है समझने में। वह जो भय है, वह भय यह है कि अगर यह समझा कि यह है इलूजन, तो गया अभी हाथ से। और अभी चला जायेगा हममें से आधों को। आधी रात हो जायेगा मुश्किल उनका सोना। क्योंकि एक दफा ख्याल हो जाये कि कहीं इलूज़न तो नहीं है!

यह मैं नहीं कह रहा कि गया, मैं इतना ही ख्याल दिला दूँ कि कहीं

इलूज़न तो नहीं। अगर इतना ख्याल तुम्हें पकड़ जाये तो इलूज़न कल सुबह ही नहीं आयेगा। क्योंकि वह सन्देह जो पड़ गया, वह इलूज़न को काट देता है, फौरन। वह कल सुबह ही दिक्कत पड़ जायेगी। गया वह। बल्कि एक दफा ही डाउट आ जाये कि जो मैं देख रहा हूँ, है भी? बस वह अनडाउट माइण्ड ही इलूज़न क्रिएट कर सकता है। जो शक करता ही नहीं कभी—सन्देह करता ही नहीं, वही इलूज़न क्रिएट कर सकता है। फिर यह जो, ये इलूज़न, उनके एक्सपीरियेन्स हैं, सब फाल्स हो सकते हैं अगर मेन्टली प्रोजेक्टेड हैं।

वहाँ अमरीका में, फ्रान्स में कुए का एक मत चलता है। फ्रेंच विचारक था, कुए। तो वह कहता है, जो सोचोगे वही हो जाओगे। वह कहता है कि अगर तुम बीमार हो तो तुम सोचो कि 'मैं स्वस्थ हूँ', 'मैं स्वस्थ हूँ', तो तुम स्वस्थ हो जाओगे।

और बड़े मजे की बात यह है कि बीमारी नहीं मिटती और आदमी स्वस्थ अनुभव करने लगता है! यानी जो आदमी कल चल नहीं सकता था, वह सड़क पर चलने लगेगा। जो आदमी कल बिस्तर नहीं छोड़ सकता था, वह बिस्तर छोड़ देगा। ताकत आती हुई मालूम पड़ेगी। वह बीमारी अपनी जगह खड़ी है! बीमारी गयी नहीं, बीमारी अपनी जगह खड़ी रहेगी। और यह आदमी अगर खाट पर पड़ा रहता तो शायद बीमारी मिटा सकता था, कि वास्तविक इलाज—अभी यह बीमारी का इलाज भी नहीं करेगा। क्योंकि एक इलूजन खड़ा हो गया है कि मैं स्वस्थ हूँ। कौन कहता है कि मैं बीमार हूँ। कोई नहीं कहता है। कोई तुमसे कहे कि तुम बीमार हो, तुम मानो ही मत। इनकार कर दो उसकी बात को। क्योंकि तुम माने, कि तुम बीमार हो जाओगे। जरूर ऐसी बीमारियाँ हैं कि मानने से हो सकती हैं, लेकिन वे झूठी हैं। अगर ऐसा स्वास्थ्य भी है जो मानने से हो सकता है, जो झूठा है। और असली और नकली स्वास्थ्य में फर्क करना बड़ा मुश्किल है, क्योंकि आप माने बैठे हैं कि आप सच में स्वस्थ हैं।

तो मेरा कहना है कि फर्क एक है। नकली स्वास्थ्य को आपको मान-मानकर पैदा करना पड़ता है; असली स्वास्थ्य को आपको मान-मानकर पैदा नहीं करना पड़ता है। आप न मानेंगे तो भी वह है। असली स्वास्थ्य जो है, वह है; आपको मानना नहीं पड़ता। नकली स्वास्थ्य को मान-मानकर

पैदा करना पड़ता है।

तो शान्ति भी पैदा की जा सकती है जो नकली है, स्वास्थ्य भी पैदा किया जा सकता है जो नकली है; प्रकाश भी पैदा किया जा सकता है। भगवान भी पैदा किये जा सकते हैं, जो नकली हैं। और नकली का पैदा करना सरल है एकदम, क्योंकि माइण्ड उसके लिए एकदम राजी हो जाता है। माइण्ड के लिए बड़ा सरल है। असली को जानना कठिन है, क्योंकि उसके जानने के लिए इनको विदा करने की जरूरत है। और माइण्ड हमेशा सिक्योरिटी माँगता है। अगर इस कमरे में भी रात सोयेगा तो वह पता लगा लेगा कि सब ताले-दरवाजे बन्द हैं, कोई खतरा तो नहीं है? अगर कोई किताब भी पढ़ेगा तो पहले पक्का पता लगा लेगा कि किताब अच्छी है कि इसमें खराब बातें तो नहीं हैं। और किसी गुरु को पकड़ेगा तो पहले पचास लोगों से पूछ लेगा कि यह गुरु ठीक है, किसी का पहुँचाया है कि नहीं? तो फिर मैं भी उसके पीछे जाऊँ।

माइण्ड जो है, वह सिक्योरिटी माँगता है। वह डरता है कि कहीं मर न जाये। और मजा यह है कि अगर आप उसको सिक्योरिटी देते चले जाते हैं किसी तरह की, तो वह मजबूत होता चला जाता है, सुरक्षित होता चला जाता है।

संन्यासी का मतलब है: जो कहता है, हम कोई सिक्योरिटी नहीं माँगते, हम इनसिक्योरिटी में जीते हैं। हम नहीं कहते कि कल कुछ मिलेगा कि नहीं मिलेगा। कल सुबह देखेंगे। यह आदमी बुरा है, भला है, हम क्यों सोचे? तो वह सोचेगा नहीं! रात वह बिस्तर उठाकर ले जायेगा तो ले जायेगा, लेकिन मैं काहे को यह निर्णय करूँ कि यह आदमी कैसा है? हम कुछ सोचते ही नहीं। हम जीते ही चुपचाप एक-एक क्षण हैं। इतने इन-सिक्योरिटी में जो जीता है, उसके माइण्ड में एक्सप्लोजन हो सकता है। वह माइण्ड से जो नहीं सकता, माइण्ड को मरना पड़ेगा। क्योंकि माइण्ड को चाहिए व्यवस्था; वह व्यवस्था खत्म हो गयी। वह कहता था, खीसे में पैसे लेकर चलो; वह कहता था, बैंक में इन्तजाम रखो; वह कहता था, भगवान के पास भी पुण्य की व्यवस्था रखो। सब हिसाब करके रखो, ताकि कुछ गड़बड़ न हो जाये। और जितना ज्यादा हिसाब, उतनी मृत्यु उपलब्ध होती है।

वह जो कह रहे थे न जीसस की बात——बहुत लम्बी हो गयी थी बात——जितनी सिक्योरिटी, जितनी सेफ्टी, उतना डैड आदमी; और जितनी इनसिक्योरिटी, जितनी जोखिम, जितना रिस्क, उतना लीविंग आदमी। और मजा यह कि भगवान के मामले में भी जोखिम लेने की तैयारी न हो, वहाँ भी हम पक्का करके ही चलें सब, तो फिर इससे बहुत मुश्किल होगी।

भगवान का मतलब ही यह है कि जो अननोन हमें चारों तरफ से घेरे हुए है, उसमें तो हमें कूद पड़ना पड़ेगा, किनारे को छोड़कर। किनारा सिक्योर था बिलकुल। वहाँ कोई खतरा न था। डूबने का कोई डर न था किनारे पर। किनारा बहुत सुरक्षित है और किनारे पर जो खड़ा है, वह जिन्दगी भर खड़ा रह सकता है। सागर का अनुभव तो उसी को मिलता है जो कूद जाये किनारे से। खतरा है वहीं। खतरा है, इसलिए ज़िंदगी है। और हमारा मन चूँकि माँग करता है यह निरन्तर कि सब व्यवस्थित, सिस्टेमैटिक होना चाहिए।

बड़े मजे की बात यह है कि जिन्दगी बिलकुल सिस्टेमैटिक नहीं है, जिन्दगी बहुत अनार्किक है। और अनार्किक है, इसीलिए जीवन है। आप फर्क कर लें, पत्थर बहुत सिस्टेमैटिक है। यहाँ फूल उतना सिस्टेमैटिक नहीं है; फूल में जिन्दगी है। पत्थर कल भी वहीं था, आज भी वहीं है, परसों भी वहीं होगा! और फूल सुबह वहाँ था, साँझ नहीं है। उसका कोई भरोसा नहीं है। अभी है, अभी जोर की हवा चलेगी, गिर जायेगा। अभी है, सूरज निकलेगा, कुम्हला जायेगा। अभी है, वर्षा आयेगी, मिट जायेगा। पत्थर जरूर होगा, बहुत-बहुत सिस्टेमैटिक है। कहना चाहिए, पत्थर बहुत कन्सि-स्टेन्ट है। जैसा है वैसे ही सदा वहीं रखा हुआ है। लेकिन पत्थर डैड है इसी अर्थों में। लेकिन फूल में लीविंग क्वालिटी है।

मेरा कहना यह है कि जिस व्यक्ति को जितने गहरे सत्य की तरफ जाना हो, उतने सुरक्षा के इन्तजाम छोड़कर जाना चाहिए। उसे जान लेना चाहिए कि खतरे में मैं जाता हूँ। सुरक्षित तो जिन्दगी यहीं है, वहाँ तो खतरा है। लेकिन जो परम खतरे में उतरने की तैयारी करता है, इस खतरे में उतरने की तैयारी ही उसके भीतर ट्रान्सफॉर्मेशन बन जाती है। क्योंकि इस खतरे में जाना बदल जाना है। सब व्यवस्था छोड़कर, सब सुरक्षा छोड़कर जो उतर जाता है अनजाने में, यह उतरने की तैयारी, यह करेज

ही उसके भीतर इनव्हीटेशन बनता है; उसके भीतर परिवर्तन हो जाता है। और जितनी बड़ी असुरक्षा में जाने को हम तैयार हैं, उतने ही हम वस्तुत: सुरक्षित हो जाते हैं; क्योंकि इसमें कोई भय न रहा, फिर कोई डर न रहा।

यह जो सारा हमें लगता है नाप-जोखकर चलना एक-एक इंच, उन्हीं सब नाप-जोखवालों ने तो स्वर्ग-नर्क के नकशे बना दिये। योजन की दूरी बता दी कि इतनी दूरी फलाँ जगह है, ताकि पक्का रहे। कोई चीज अनजानी न रह जाये। लेकिन कुछ है, जो अनजाना है निरन्तर——और वही परमात्मा है। वही जीवन है जो अनजाना है। जो मृत है, कल उसके बाबत हम सुरक्षित हो सकते हैं। जो जीवित है, वह कैसा होगा, कुछ भी कहना मुश्किल है! जीवन्त के साथ बड़ी कठिनाई है और हम सब व्यवस्था जमाकर उसको मार देते हैं।

और मजे की बात यह है कि जब भी सिस्टम बनायी जाये तो वह झूठी हो जाती है। झूठी इसलिए हो जाती है कि उसमें कन्ट्राडिक्शन बरबाद नहीं किये जा सकते। तो उसमें कन्ट्राडिक्शन्स अलग कर देने पड़ते हैं। यानी वह ऐसा है, जैसा कोई पेन्टर चित्र बनाये तो वह काला रंग भी लाता है, सफेद रंग भी लाता है, और सफेद और काले को लाकर चित्र बना देता है, लेकिन कन्ट्राडिक्शन है। फिर एक पेन्टर आये और वह कहदे, कन्ट्राडिक्शन है। कहीं सफेद तो कहीं काला; तो कुछ भरोसे की बात नहीं मालूम पड़ती है। या तो काला-ही-काला हो तो मालूम होता है, या सफेद-ही-सफेद हो तो मालूम होता है। तो वह एक सफेद पेन्टिंग बना दे; एक काली पेन्टिंग बना दे, तो दो चीजें हो गयीं हैं। लेकिन दोनों में कोई पेन्टिंग नहीं है। वे दोनो बिल्कुल साफ-सुथरी हैं, विरोधी है ही नहीं कोई।

जिन्दगी पूरे विरोध से मिलकर बनी है; सब चीजों में विरोध है। इसलिए जो पूरी जिन्दगी को समझने जायेगा, वह सब तरह के विरोधों को स्वीकार करेगा कि वह है। वह दोनों हैं और दोनों एक के ही रूप हैं। ऐसा अगर कोई कहेगा तो कन्ट्राडिक्ट्री मालूम पड़ेगा कि यह तो बड़ी उलटी बात हो रही है। जैसे कि समझ ले : मैं कहता हूँ, उसे पाने के लिए कुछ भी नहीं करना है; लेकिन जो कुछ भी नहीं कर रहे हैं वे उसे पा लेंगे, यह मैं नहीं कहता। यह कन्ट्राडिक्शन मालूम होता है न। यानी मैं यह

कहता हूँ कि उसे पाने के लिए कुछ भी करना नहीं है, लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि जो कुछ भी नहीं कर रहे हैं वे उसे पा लेंगे। अब यह बिल्कुल कन्ट्राडिक्ट्री बात है, लेकिन अगर मेरी बात समझ में आये तो समझ में आ जायेगी। जब मैं कहता हूँ, नॉट डूईंग एनीथिंग, तो इसका मतलब यह नहीं है कि डूईंग नथिंग, नॉट डूईंग एनीथिंग, इसका मतलब यह नहीं है कि नथिंग, नहीं। तो कई आदमी जो यहाँ कुछ भी नहीं कर रहे हैं, सड़क पर चल रहे हैं, उनको मिल जाना चाहिए। यह मैं नहीं कह रहा हूँ। सड़क पर चलनेवाला भी कुछ कर रहा है। जिसको हम कहते हैं कुछ नहीं कर रहा है, वह भी कुछ कर रहा है। मन्दिर में बैठा आदमी भी कुछ कर रहा है; संन्यासी भी कुछ कर रहा है। सच में ऐसी दशा में कोई भी नहीं खड़ा हो रहा है, जहाँ कि वह कुछ भी न कर रहा हो।

कोई खड़ा हो जाये, तो पाले। लेकिन यह न करना, मैंने कहा कि बहुत कठिन है। इसलिए नहीं कठिन है कि कोई टेकनीक से सरल हो जायेगा। यह कठिन इसलिए है कि हमारी करने की आदत मजबूत है। और टेकनीक इसे सरल नहीं बनायेगी और इसे होने नहीं देगी। क्योंकि टेकनीक फिर करने की आदत को मजबूत कर देगी। यह जो मामला है सारा, यानी मैं जो कह रहा हूँ कि यह जो न करना है, इसको हमने कहा कि न करना तो हम टेकनीक के द्वारा करेंगे, तो सरल हो जायेगा, क्योंकि कठिन है। कठिन मैं इसलिए नहीं कह रहा हूँ कि वह सरल हो सकता है। कठिन मैं इसलिए कह रहा हूँ कि हमारे मन की आदत करने की है। न करने की उसकी आदत नहीं है। और टेकनीक भी करना है। मन इसके लिए राजी हो जायेगा कि चलो, करें। लेकिन करे कोई कितना ही, करने से न करने पर कैसे पहुँच सकता है? डूईंग नॉन डूईंग कैसे बन सकती है? वह तो किसी-न-किसी क्षण उसे जानना पड़ेगा कि डूईंग से नहीं होता है। और डूईंग छूट जायेगी तो नॉन डूईंग शेष रह जायेगी।

यह जो बहुत सारी कठिनाई न करने में ठहरने की है। तो कोई भी करना पकड़ा दिया जाये आपको कि राम-राम जपिये, तो आप ठहर सकते हैं? ...तो ठहर सकते हैं? बात ही खत्म हो गयी। वह बात ही खत्म हो गयी, वह न करने में ठहरना था। इसलिए जैसा उन्होंने कहा कि कोई सपना गहरा है, कोई उथला है, यह सवाल ही नहीं है। जैसे कोई कहे कि एक

आदमी ने दो पैसे की चोरी की और एक आदमी ने दो लाख की चोरी की, तो एक की चोरी छोटी और एक की चोरी बड़ी ? अगर कोई ठीक-से समझेगा तो चोरी छोटी-बड़ी कैसे हो सकती है? चोरी करना एक माइन्ड की बात है। चोर, वह दो पैसे चुराता है कि दो लाख, यह सवाल ही नहीं है बिल्कुल ! दो पैसे चुराने में जितना चोर होना पड़ता है, उतना ही दो लाख चुराने में भी होना पड़ता है चोर। जो आँकड़ा है, वह दो पैसे और दो लाख का है, चोरी का नहीं है। चोरी करनेवाले का जो चित्त है, वह बिल्कुल समान है--चाहे वह दो पैसा चुराये, चाहे एक कंकड़ चुराये, चाहे दो करोड़ चुराये। कोई यह नहीं कह सकता है कि दो पैसे चुरानेवाला छोटा चोर है, दो लाख चुरानेवाला बड़ा चोर है। बड़े और छोटे चोर होते हैं--कि चोर होते हैं ? छोटे और बड़े अवसर होते हैं, चोर छोटा और बड़ा नहीं होता। एक को दो पैसे चुराने का अवसर मिला, एक को दो करोड़ चुराने का अवसर मिला है। चोर का माइन्ड है। चोरी छोटी-बड़ी नहीं होती।

एक आदमी सपना देख रहा है साधारणतः, हल्का-फुल्का, एक आदमी बहुत बड़ा सपना देख रहा है। यह जो फर्क है, ये फर्क इसी तरह के हैं,जैसे दो पैसे की चोरी की और लाख की चोरी की। सपना सपना है, नींद नींद है, उसका टूटना टूटना है। इन दोनों के बीच में सच में ही कोई सीढ़ी नहीं है। सोया हुआ आदमी सोया हुआ आदमी है; जागा हुआ आदमी जागा हुआ आदमी है। इन दोनों के बीच कोई गैप नहीं है। और जिसने सीढ़ियाँ पार कर ली हैं कि यह आदमी थोड़ा जग गया है, यह आदमी थोड़ा और जग गया है, यह आदमी थोड़ा और जग गया है, ऐसा नहीं है।

जागता जो है, उसकी क्वाँटिटि नहीं है कि थोड़ी बड़ी हो सके। आप बिस्तर पर पड़े हैं। बाहर का आदमी कह सकता है कि यह आदमी थोड़ा जग गया है; करवट बदलता है, आँख खोलकर देखता है। लेकिन आप पूरे जग गये है; पड़े रहें, यह दूसरी बात है। जाग ऐसी नहीं है कि थोड़े-से जग गये हैं आप--जग गये। लेकिन आदमी को एकदम से यह बात कठिन मालूम पड़ती है, क्योंकि उसे स्टेप चाहिए। वह कहता है कि सीढ़ियाँ बता दीजिए। तो पहली सीढ़ी, दूसरी सीढ़ी, तीसरी सीढ़ी, ऐसी सीढ़ियाँ बताइए। लेकिन हमारी सामर्थ्य कम है, हम पूरी सीढ़ियों पर नहीं जाते, एक पर जायेंगे। तो आदमी की यह माँग जो है, यह सीढ़ियाँ पैदा करवा

देती है। और सीढ़ियाँ पैदा करनेवाले तो जरूरी समझ कर उपयोग कर सकते हैं। वह पचास सीढ़ियाँ बना दें और तब वे सब तृप्ति दे देते हैं कि आप पहली सीढ़ी चढ़ो, दूसरी सीढ़ी चढ़ो, तीसरी सीढ़ी चढ़ो। सबको तृप्ति मिल रही है। लेकिन जहाँ सीढ़ियाँ आती ही नहीं हैं, वहाँ कहाँ पहली सीढ़ी; कहाँ दूसरी सीढ़ी, कहाँ तीसरी सीढ़ी ?

मेरी दृष्टि में अनुभूति सीढ़ियाँ चढ़ने-जैसी नहीं है। वह तो छत से कूदने-जैसी है। उसमें कोई सीढ़ियाँ होती ही नहीं--कूदा आदमी, बस! लेकिन हमारा मन चढ़ना चाहता है, यह भी ध्यान रखना चाहिए।

अहंकार चढ़ने में रस लेता है, उतरने में रस नहीं लेता। अहंकार कहता है--चढ़ाओ कहीं ऊपर...और एक सीढ़ी, और एक सीढ़ी, और एक सीढ़ी। वह सीढ़ियाँ किसी भी चीज की हों, अहंकार कहता है, ऊपर चढ़ाओ। और इसलिए अहंकार मार्ग पकड़ता, पथ पकड़ता, टेकनीक पकड़ता, गुरु पकड़ता, शास्त्र पकड़ता है--सब पकड़ता है। और धर्म कहता है, कूद जाओ, चढ़ने का वहाँ कहाँ उपाय है ? बिल्कुल उतर जाओ आखिरी जहाँ उतर सकते हो। और उतरना भी हो सकता था अगर सीढ़ियाँ हो सकती थीं। लेकिन सीढ़ियाँ हैं ही नहीं, कूद ही सकते हो; छलाँग लगा सकते हो!

यह जो छलाँग लगाने की हमारी हिम्मत नहीं जुटती है, तो हम कहते हैं कि यह ज्यादा हो जाता है। तो थोड़ा संक्षिप्त करो, सरल करो--कोई टेकनीक, कोई व्यवस्था, कोई विधि, जिसमें हम टुकड़े-टुकड़े में पा लें। एक खण्ड पहले पा लें, फिर एक खण्ड फिर पा लेंगे, इन्सटॉलमेन्ट में पा लें।

यह हमारा ख्याल है, वह इन्सटॉलमेन्ट में मिलता नहीं है। तो बाहर आदमी खोज रहा है--शान्ति खोज रहा है, आनन्द खोज रहा है, सुख खोज रहा है। तो किसी आदमी को कहो, खोजो मत, तो वह कहता है : मर गये। क्योंकि जहाँ वह खड़ा है, वहाँ तो दुख-ही-दुख मालूम पड़ेगा। उसे लगता है कि अगर न खोजे तो फिर गया। क्योंकि जो मैं हूँ, वहाँ तो दुख, चिन्ता के सिवाय कुछ भी नहीं है। और आप कहते हैं मत खोजो, तो फिर मैं गया, फिर क्या होगा ? लेकिन उसे पता नहीं है कि न खोजने की चित्त-दशा क्या है ? न खोजने की चित्त-दशा इसने कभी जानी ही नहीं ! वह सदा ही खोजता रहा है--कभी खिलौने खोजता था, कभी पदवियाँ खोजता था, कभी मोक्ष खोजता था।

छोटा-सा बच्चा खोजना शुरू कर देता है, मरता बुड्ढ़ा तक खोजता रहता है। एक क्षण को पता नहीं चलता कि न-खोजना, नो-सिकिंग क्या है! और तब वह कहता है कि नही खोजूंगा तो गये; हम तो खोजते रहेंगे कि पा लेंगे! तो मेरे पास कोई आता है, वह कहता है कि आपके पास इसलिए आया हूँ कि आप मुझे खोज पर लगा दें। खोज तो हम पहले से नहीं कर रहे थे? अगर मिलना होता तो कभी का मिल जाता। मैंने कहा, तुम खोज पर नहीं गये थे? कुछ और खोज रहे थे, यह नहीं खोज रहे थे? न-खोज नहीं थी वह।

वह न-खोज बात ही अलग है। और जैसे ही कोई न-खोज में ठहर जाये, एक्सप्लोजन हो जाता है। तो उन्होंने पीछे कहा कि उनका कोई गुरु नहीं है, वह बात ठीक है। मेरा कोई गुरु नहीं है। यह कोई इस वजह से मैं गुरु को इनकार नहीं कर रहा हूँ। और मैं इस वजह से भी इनकार नहीं कर रहा हूँ, चूंकि मैं नहीं बता सकता कि सिस्टम क्या है, इसलिए भी इनकार नहीं कर रहा हूँ।

सिस्टम बनाने से आसान कोई चीज है दुनिया में? आदमी थोड़ा सोच-विचार जानता हो, सिस्टम बनाने में क्या तकलीफ है? बहुत सरल-सी बात है व्यवस्था बना लेना तो। बड़ी बात तो अव्यवस्था में उतरना है; व्यवस्था बनाना तो बड़ी ही सरल बात है। अव्यवस्था में उतरना, अनारकी में उतरना ही बड़ी बात है। और उतने रिव्होल्यूशन का ख्याल नहीं होता। अब वे जितनी देर थे, उन सबको जो कठिनाई हो रही थी, वह कठिनाई बहुत गहरी है। वह कठिनाई है कि वे सब बिलीफ में लगे हुए हैं। वह धारा पूरे वक्त है। क्योंकि हम गये—अगर यह बात ठीक है तो यह गुरु और यह साधना, यह जो चलता है, यह सब गया। वह तकलीफ लगेगी पूरे वक्त कि नहीं, यह बात ठीक नहीं है, यह हम मान नहीं सकते!

समझने का सवाल नहीं है—यह डिफेंस चल रहा है पूरे वक्त माइन्ड में। समझने का सवाल हो तो एकदम से बात दिखायी पड़ जाये। और इसलिए मेरी बात थोड़ी कठिन तो है। थोड़ी कठिन इसीलिए है कि हमारा माइन्ड जो चाहता है, वह मैं नहीं दे रहा हूँ। और वह मैं दे नहीं सकता, क्योंकि उसे देना माइन्ड को परिपुष्ट करना है, उसे मजबत करना है। और वह टूटना चाहिए, मजबूत होना नहीं चाहिए।

असल में जो व्यक्ति भीतर जितना डूईंग में उलझा हुआ है, बाहर की उसकी डूईंग उतनी ही कमजोर होगी; क्योंकि उसकी शक्ति बंट रही है। भीतर जो दिमाग में चल रहा है—क्योंकि जितना ही भीतर आप नॉन-डूईंग में उतर गये, उतना आपके चारों तरफ डूईंग का बोध तीव्र भाव से होगा। और तब आपके लिए डूईंग एक—जिसको हम कहें—एक्सप्रेशन होगा, एक पागल भीड़ नहीं होगी। आपकी डूईंग, आपके भीतर जो हुआ है उसको क्रिएट करने का, बाँटने का एक्सप्रेशन होगा। बहुत रूपों में होगा। वैसा आदमी चौबीस घन्टे सक्रिय होगा; लेकिन भीतर बिलकुल निष्क्रिय होगा।

कई दफा ख्याल होता है, बाहर की डूईंग से कोई वास्ता ही नहीं है। और मजा यह है कि कई लोग बाहर डूईंग छोड़कर भाग जाते हैं और भीतर की डूइंग जारी रखते हैं। लेकिन बाहर तो कोई संन्यासी हो जाता है दुकान छोड़कर, लेकिन भीतर का काम जारी रखता है। वह जारी रहता है पूरे वक्त। कठिन है, लेकिन एक दफा ख्याल में आ जाये,...

प्रश्न : 'बी-स्टिल' का क्या ख्याल है जीसस का?

उत्तर : जीसस का ख्याल बिलकुल नहीं है, जो मैं कह रहा हूँ। जीसस यही कह रहे हैं कि 'बी-स्टिल'। 'बी-स्टिल' में असल में जो मतलब है, वह यह है कि कोशिश मत करो, स्टिल होने की; जस्ट बी स्टिल। हाँ, अगर स्टिल होने की कोशिश करो, तकनीक लगाओ और साधन, प्रोसेस लाओ, तब अभी तो स्टील नहीं हो। अभी शान्त नहीं हो, तो शान्त कैसे हो जाओगे? तो शान्त होने के लिए कुछ करो और करके तुम शान्त हो जाओगे। और मजा यह है कि हम अशान्त इसीलिए हैं कि हम कुछ कर रहे हैं। यह जो प्रॉब्लम है, इसलिए है।

जीसस जो कहते हैं, 'बी स्टिल,' वे कहते हैं कि बहुत मुश्किल मामला है। महेश जी तो बिलकुल नहीं समझे। वह तो इस जल्दी में बात की है कि किसी तरह मैं उनको समझा दूं कि दोनों एक बात है; किसी तरह मैं बता दूं कि ये दोनों बातें एक ही हैं। उस कोशिश में पूरे वक्त उनका मन लगा हुआ था। और उनकी हमारी बात का तालमेल ही रहा?—कोई भी

तालमेल नहीं है। यानी इससे ज्यादा उल्टी बात ही नहीं हो सकती! और मैं यह नहीं कह रहा हूँ कि उनको वही पहुँच जाये जो मैं कह रहा हूँ।

मगर वह एक तो सब मन में भरा होता है। पूरा-का-पूरा तैयार है और उससे अन्यथा को तो बहुत कठिनाई है। और फिर शिष्यों के सामने तो और भी बहुत कठिनाई है। छोटा मामला नहीं है—यह जो बड़ा मकान बनाकर आदमी खड़ा होता है न! तो सब गिर जायेगा कि आप जाकर कहते हैं कि मकान है ही नहीं, तो मानने का सवाल ही नहीं है। समझें तो भी समझना भी मुश्किल मामला है। और शब्दों में ऐसा मजा है कि जितनी गहरी बात हो, उतना ही शब्दों में कहना मुश्किल हो जाता है। और जैसे ही कहते हैं, वैसे ही शब्द कन्ट्राडिक्ट्री हो जाता है। अब जैसे 'बी स्टिल' है, अब इसका मतलब कुल इतना ही है,...

...जीसस के जीवन में एक उल्लेख है: वे एक नाव पर हैं गैलीली नाम की झील में और कुछ मित्र साथ हैं। गैलीली की झील में नाव पर वे सो गये हैं। झील में तूफान आ गया है बहुत जोर से। सारी नाव डूबने के करीब होने लगी है। मित्रों ने उन्हें जगाया है कि क्या सो रहे हैं, हम मरे जाते हैं! तो उन्होंने कहा, जाओ! कह दो झील से कि शान्त हो जा। और फिर सो गये हैं। तूफान तेजी पर है और नाव डूबने के करीब है। मित्र तो गुस्से में आ गये। उन्होंने कहा, नदी को कहने से तूफान कोई शान्त हो जायेगा? कहीं कहने से भी कोई शान्त हुआ है? शान्त करने के लिए कुछ करना पड़ेगा, जीसस से उन्होंने कहा। जीसस उठे हैं और झील के किनारे गये हैं...।

यह तो पेरेबल है।

...झील के किनारे जाकर उन्होंने कहा कि शान्त हो जा—बी स्टिल; और झील शान्त हो गई! वे मित्र बड़े चकित हुए। उन्होंने कहा, यह कैसे हुआ कि सिर्फ कहने से कि शान्त हो जा!

यह तो पैरेबल है। यानी मतलब यह है कि हम जिस झील में हैं, जहाँ भी हमारी नाव डगमगा रही है, डोल रही है, वहाँ कुछ करना नहीं है, बल्कि यह समझ लेना है कि स्टिलनेस क्या है, तो 'बी स्टिल' की बात हो जाएगी। और जब भी हमने चाहा कि शान्त कैसे हों, तो यह नयी अशान्ति का सूत्रपात है, और कुछ भी नहीं है! जैसे हमने कहा कि 'हाऊ टु बी

स्टिल?' तो हमको एक मेथड चाहिए, फिर मेथड में लगें, फिर शान्ति आयेगी। अब यह अशान्ति का नया सिलसिला है।

अशान्ति का मतलब क्या है? अशान्ति का मतलब है कि जहाँ हम हैं, वहाँ होने का हमारा मन है। यह हमारे चित्त की अशान्ति है, यह टेन्शन है। और 'बी स्टिल' का मतलब है कि जहाँ हो वहीं हो जाओ—बी व्हेयर यू आर। इतना ही मतलब है। अगर शान्त हो फिर अशान्त होओगे कैसे? यानी मतलब यह है कि अशान्त होने की तरकीब ही यह है कि जहाँ हो, वहाँ मत रहो। हमेशा 'झुठ' में जियो कि वहाँ होना चाहिए, यह होना चाहिए, तो फिर अशान्ति होगी। और 'शुड' में जाओ ही मत कि यह होना चाहिए—जो है, है—और चुप हो जाओ तो उसी वक्त शान्त हो जायेंगे।

वह समझ में आना सच में ही कठिन है; एकदम कठिन है।

प्रश्न: हिप्नोसिस से जो शान्ति मिलती है, उससे वे खुश हो जाते हैं कि नहीं?

उत्तर: कितने दिन?... तीन महीने से ज्यादा नहीं, छः महीने से ज्यादा नहीं। छः महीने बाद उनमें से एक आदमी लौटा लायें। छः महीने बाद दूसरे आ जायेंगे, वह दूसरी बात है। छः महीने से ज्यादा नहीं, क्योंकि हिप्नाटिक जो शान्ति है, वह रूटीन हो जाती है। अगर होने लगी है आपको तो दो महीने के बाद प्रभाव जाता रहता है। रूटिन हो गयी कि व्यर्थ हो जाती है। फिर गया वह; फिर उसका कोई मतलब न रहा। वह ट्रिक हो गया और आपको पता हो गया कि बैठकर ऐसा राम-राम जपने से थोड़ा मन शान्त हो जाता है, अब वह रोज होने लगा। पहले दिन आता तो अच्छा लगा; दूसरे दिन कम अच्छा लगा; तीसरे दिन कम और चौथे दिन और कम। जैसे पच्चास दिन कोई फिलम देख लें तो वह बेकार हो गयी, ऐसे ही इनको तीन महीने बाद बेकार हो जानेवाला है।

इसलिए होता क्या है? असल में तीन महीने बाद वह खिसक जायेगा, फिर दूसरा कोई हाथ पड़ जायेगा। और दुनिया इतनी बड़ी है...इसलिए कहीं पता चल नहीं पाता इस बात का ठीक-ठीक कि किसको हो गया। वह होने का मामला नहीं है। जो चला गया, वह चला गया। दूसरा अब

गया है, अब वही बात उसको होने लगी है।

मेरा कहना यह है कि हिप्नोटिक ढंग से लायी गयी शान्ति चूँकि झूठी है, इसलिए बहुत जल्दी उसका मुलम्मा उतर जाता है। वह तो तीन-चार महीने में खत्म हो जाती है, उसके बाद फिर आप वहीं-के-वहीं खड़े हैं। तब आप फिर नया गुरु खोजेंगे। तब भी आपको यह ख्याल में न आयेगा कि गुरु खोजने में ही गड़बड़ है। इसको छोड़कर उसके पास चलें, इससे कुछ नहीं मिला। तब एक आश्रम से दूसरे आश्रम जाता है, तीसरे जाता है—एक गुरु, दूसरा गुरु, तीसरा गुरु बदलता रहता है। और हर गुरु उसको टेकनीक बता देता है। उसको लगता है कि टेकनीक ही गलत है, लेकिन यह ख्याल में नहीं आता है कि उसमें कुछ गड़बड़ होगी। मगर यह ध्यान में नहीं रहता है। कोई तरकीब होगी कि उस तक पहुँचा जा सके।

अच्छा हुआ, गुरु पर बातचीत अच्छी हुई। ऐसे चार-छः किस्म की बात की जरूरत है। चार-छः दिन में और तरफ देखेंगे, एक दिन में तो वह सब मुश्किल हो जाता है न !

प्रश्न : स्पष्ट नहीं है।

उत्तर : सवाल यह है, दो तरह की चीजें होती हैं; या तो ग्रेजुअल प्रोसेस होती है किसी चीज़ की, या एक्सप्लोजन होता है। एक्सप्लोजन का मतलब है, ग्रेजुअल प्रोसेस नहीं, एव्होल्यून नहीं, रिव्योलूशन। जो ग्रेजुअल प्रोसेस होती है किसी एक चीज की, और एक चीज की ग्रेजुअल प्रोसेस नहीं होती। जो चीज हमसे दूर है, उसे तो हमें ग्रेजुअल ही पाना होगा। एक्सप्लोजन का मतलब ही इतना है [सिर्फ कि कोई चीज एकदम सडन हो। और हम ज्यादा-से-ज्यादा जो कर सकते हैं, वह यह कि अगर होने की स्थिति बन जाये तो उसके लिए मैं कह रहा हूँ कि नॉन डूईंग माइन्ड चाहिये।

प्रश्न—कोई चीज मिलेगी ?

उत्तर—मिलने का जो ख्याल है न, वही तो हमारे दुख की जड़ है। मिलेगी, मिलेगी ?

प्रश्न : स्पष्ट नहीं है।

उत्तर—होता क्या है कि लोग खोलने को भी एक्ट समझते हैं, क्योंकि शब्द में तो एक आदमी जो बीच में कह रहे थे, वह ठीक कह रहे थे। मैं कहता हूँ कि मुट्ठी खोलो मत। तुम जो बन्द करने की क्रिया कर रहे हो, वह मत करो तो मुट्ठी खुल जायेगी। खुला होना मुट्ठी का स्वभाव है और बन्द करना एक्ट है। तो तुम बन्द मत करो तो मुट्ठी खुल जायेगी। लेकिन वह कहेगा नहीं, खुल जाना तो एक क्रिया है। खोलेंगे तभी खुलेगी न। वह जो चूक हो जाती है, शब्दों में बड़ी चूक है। अगर समझने को तैयार हैं तो समझ में आ जाता है, नहीं तो फिर कोई उपाय नहीं है।

श्रीनगर, २७ सितम्बर, १९६९

भगवान श्री रजनीश का उपलब्ध हिन्दी साहित्य

रा. = राज संस्करण   सा. = सामान्य संस्करण

पुस्तक	मूल्य
सहज समाधि भली (झेन व सूफी कथाएं)	रा. ७५-०० सा. ५०-००
एस धम्मो सनंतनो-१ (बुद्ध)	रा. ८०-०० सा. ५०-००
एस धम्मो सनंतनो-२	रा. ८०-०० सा. ५०-००
एस धम्मो सनंतनो-३	रा. ८०-०० सा. ५०-००
भक्ति सूत्र-१ (नारद-वाणी)	रा. ५०-०० सा. ३०-००
भक्ति-सूत्र-२	रा. ५०-०० सा. ३०-००
एक ओंकार सतनाम (नानक-वाणी)	रा. ७५-०० सा ५०-००
पिव-पिव लागी प्यास दादू-वाणी	रा. ५०-०० सा. ३०-००
अथा तो भक्ति जिज्ञासा-	रा. ७०-००
दिया तले अन्धेरा	रा. ७५-०० सा. ५०-००
तत्वमसि	४०-००
संकलन : क्रान्ति बीज, पथ के प्रदीप, अन्तर्वीणा, घूंघट के पट खोल (अप्रकाशित)	
का सोवै दिन रैन	रा. ५०-००
जिन खोजा तिन पाइयां	४०-००
भज गोविन्दम (आदि शंकराचार्य)	रा. ५०-०० सा. ३०-००
बिन घन परत फुहार (सहजो-वाणी)	रा. ५०-०० सा. ३०-००
जिन सूत्र-१ (महावीर)	रा. ८०-०० सा. ५०-००
जिन-सूत्र-२	रा. ८०-०० सा. ५०-००
जिनसूत्र-३	रा. ८०-०० सा. ५०-००
जिन-सूत्र-४	रा. ७०-००
साधना-सूत्र	रा. ६०-०० सा. ४०-००
मेरा मुझमें कुछ नहीं (कबीर-वाणी)	रा. ५०-०० सा. ३०-००
अकथ कहानी प्रेम की (फरीद-वाणी)	रा. ५०-०० सा. ३०-००
मैं मृत्यु सिखाता हूं	४०-००
महावीर : मेरी दृष्टि में	४०-००
ताओ उपनिषद-१	४०-००
ताओ उपनिषद भाग-२	४०-००
ताओ उपनिषद भा-३	रा. ७५-०० सा. ४५-००
ताओ उपनिषद्-४	७०-००
महावीर वाणी भाग-१	३-००
गूंगे केरी सरकरा (कबीर-वाणी)	रा. ५०-०० सा. ३०-००
कस्तूरी कुंडल बसै (कबीर-वाणी)	रा. ५०-०० सा. ३०-००
ईशावास्य उपनिषद्	१५-००
सत्य का पहली किरण	६-००
प्रभु की पगडंडियाँ	६-००
संभोग से समाधि की ओर	६-००
समाजवाद से सावधान	५-००
जीवन क्रांति के सूत्र	१२-००
पद घूंघरु बाँध	८-००
सबै सयाने एक मत	रा. ६०-०० सा. ३०-००
गीता-दर्शन अध्याय-३	रा. ५०-०० सा. ३०-००
गीता-दर्शन अध्याय-४	३०-००
गीता-दर्शन अध्याय-८	२५-००
गीता-दर्शन अ.-१०	रा. ५०-०० सा. ३५-००
गीता-दर्शन अध्याय-११	२५-००
गीता-दर्शन अध्याय-१२	रा. ५०-०० सा. ३०-००
गीता-दर्शन अ.-१३-१४	रा. ८०-०० सा. ५०-००
गीता-दर्शन अ.-१५-१६	रा. ६०-०० सा. ४०-००
गीता-दर्शन अ.-१७	रा. ६०-०० सा. ४०-००
गीता-दर्शन अ.-१८	रा.१००-०० सा. ६०-००
महावीर वाणी भाग-२	३०-००
महावीर वाणी भाग-३	रा. ८०-०० सा. ५०-००
मिट्टी के दिए	५-००
संभावनाओं की आहट	८-००
पथ के प्रदीप	६-००
गहरे पानी पैठ	७-००
पथ की खोज	२-००
प्रेम है द्वार प्रभु का	१२-००
समुंद समाना बुंद में	९-००
घाट भुलाना बाट बिनु	१२-००
समाजवाद अर्थात आत्मघात	६-००
सुनो भाई साधो	रा. ५०-०० सा. ३०-००
अध्यात्म उपनिषद	रा. ८०-०० सा. ५०-००
मैंने राम रतन धन पायो	रा. ८०-०० सा. ५०-००
बिन बाती बिन तेल	रा. ८०-०० सा. ५०-००
पाथेय	३५-००
सूली ऊपर सेज पिया की	७-००
नहिं राम बिन ठांव	रा. ८०-०० सा. ४०-००
कन थोरे कांकर घने	रा. ६०-०० सा. ४०-००
सर्वसार उपनिषद	रा. ६०-०० सा. ४०-००
कैवल्य उपनिषद	रा. ६०-०० सा. ४०-००

महागीता–१	रा. ६०–००	जगत तरैया भोर की	रा. ५०–००
	सा. ३५–००		सा. ३०–००
महागीता–२	रा. ६०–००	कठोपनिषद	रा. ७०–००
	सा. ३५–००	कानो सुनी सो झूठ सब	रा. ५०–००
महागीता–३	रा. ६०–००	अजहूँ चेत गंवार	रा. ७०–००
	सा. ३५–००	नहीं सांझ नहीं भोर	रा. ५०–००
महागीता–४	रा. ६०–००	कहै कबीर दिवाना	रा. ५०–००
	सा. ३५–००		सा. ३०–००
महागीता–५	रा. ६०–००	कहै कबीर मैं पूरा पाया	रा. ५०–००
	सा. ३५–००		सा. ३०–००
महागीता–६	रा. ५०–००	झुक आयी बदरिया सावन की	५०–००
शिव-सूत्र	रा. ४०–००	जस पनिहार धरे सिर गागर	५०–००

संपर्क –

रजनीश फाउंडेशन

श्री रजनीश आश्रम, १७, कोरेगांव पार्क, पूना-४११ ००१.

फोन : २८१२७

AVAILABLE BOOKS OF BHAGWAN SHREE RAJNEESH

LATEST BOOKS IN ENGLISH

D = Deluxe edition O = Ordinary edition

Hammer on the Rock	125.00
Above All Don't woblle	125·00
Nothing to Loose but your Head	125.00
The Plan for Miracle	125.00
The Cypress in the Courtyard	125.00
The Beloved of my heart	125.00
Get out of your own way	125.00
The Great Nothing	125.00
The Hidden Harmony (Discourses on the fragments Hera Clitus)	80.00
When the Shoe Fits (alks on the stories of chuang Tzu)	75.00
The Mustard Seed (Discourses on Jesus)	75.00
The Way of the white Cloud (Talks based on questions)	66.00
No Water No Moon (Discourses on Zen)(D)	65.00
—do—(O)	40.00
Returning to the source (Discourses on zen)	65.00
Tao : The Three Treasures (Discourses on LAOTZU)	75.00
Treasurers II	75.00
—do— III	75.00
—do— IV	75.00
Dang Dang Doko Dang	75.00
God is not for sale	125.00
A Rose is A Rose is a Rose	125.00
Roots & wings (talks based on questions)	D 65.00
	O 50.00
And the flowers showered (discourses Ton Zen stories)	75.00
Meet Mulla Nasruddin (Mulla Stories)	5.00
Neither This Nor That (discourses on Sosan-Zen)	65.00
The Silent Explosion (talks based on questions)	12.50
The Ultimate Alchemy	

The Book of the Secrets (discourses on Tantra)		(discourses on the Atma Pooja Upanishad)Vol. I	40.00
Vol. I	65.00	Vol. II	75.00
Vol. II	65.00	Two Hundred two (Mulla Jokes)	10.00
Vol. III	65.00	Yoga—As a Spontaneous	
Vol. IV	75.00		
Vol. V	75.00	The Vital Balance	1.50
Just Like That (discourses on sufi stories)	75.00	The Gataless Gate	2.00
		Seriousness	4.00
		The Eternal Message	3.00
Tantra : The Supreme Understanding (discourses on Tilopa's song of mahamudra)	75.00	Thy will be done ?	2.00
		Seeds of Revolution	8.00
		From Sex to Super Conciousness	6.00
Wisdom of Folly (Mulla Jokes)	6.00	Lead Kindly Light	1.50
		Happenigg	2.00
L. S. D.: A Shortcut to False-Samadhi	2.00	Inner Ectasy.	25.00
		Come Follow Me I	75.00
Acharya Rajneesh : A Glimpse	1.25	—do— II	75.0
		—do— III	75.00
Acharya Rajneesh Mystic of feeling	20.00	Lifting the veil	15.00
		Beyond and Beond	3.00
YOGA : the Alpha and the Omega Vol. i	75.00	The New alchemy to turn you on	75.00
Vol. II	75.00	The Search	75.00
III	75.00	The Supreme Doctrine	75.00
—do— IV	75.00	Ancient music In the Pines	75.00
—do— V	75.00		
—do— VI	75.00	The Sudden Clash of Thunder	75.00
—do— VII	75.00		
—do— VIII	75·00	Meditation : The Art of	
The Alpha and Omega 9th	75·00	The Divine Melody	75.00
		The Path of love	75.00

The Alpha and Omega 10th	75.00	The Heart Sutra	75.00
Ec tasy the Forgotten Language	75·00	The Discipline of transcendence I	75.00
The Art of Dying	75.00	The Discipline of Transcendence II	75.00
The Beloved I	75.00	The Discipline of arnscendence III	75.00
The Beloved II	75.00	Lowards the Unknown	1.50
Meditation—A New Dimension	3.00		

Rajneesh Foundation Newsletter [Fortnightly]

Annual Subscription	24.00	One Copy	1.25
Sannyas (Bi-monthly)		One Copy	10.00
Aunual Subscriptioh	60.00		

* ▣ *

CONTACT —

Rajneesh Foundation

Shree Rajneesh Ashram, 17, Koregaon Park, Pune-411 001.
Maharashtra, (INDIA)
Phone : 28127

नविनतम पॉकेट बुक

ओम रजनीश ध्यान केंद्र

३१, इजराइल मोहल्ला, भगवान भुवन, मसजीद बंदर रोड,

बंबई–४०० ०३१. दूरध्वनी क्र. ३२१०८५